धर्म एवं अध्यात्म के तत्त्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

अखण्ड ज्योति

वर्ष-82
अंक-11
₹-18 प्रति
₹-220 वार्षिक
नवंबर-2018
www.awgp.org

05 बेजबानों की जबान बन जाएँ हम
19 धैर्यपूर्वक सहने का नाम है तितिक्षा
27 अद्भुत है ध्यान की महिमा
35 भावों से करें भगवान की पूजा

15 अगस्त की एक झलक

Unnayan 2018

देव संस्कृति विश्वविद्यालय में हर्षोल्लासपूर्वक संपन्न 'उन्नयन 2018'

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

उस प्राणस्वरूप, दुःखनाशक, सुखस्वरूप, श्रेष्ठ, तेजस्वी, पापनाशक, देवस्वरूप परमात्मा को हम
अपनी अंतरात्मा में धारण करें। वह परमात्मा हमारी बुद्धि को सन्मार्ग में प्रेरित करे।

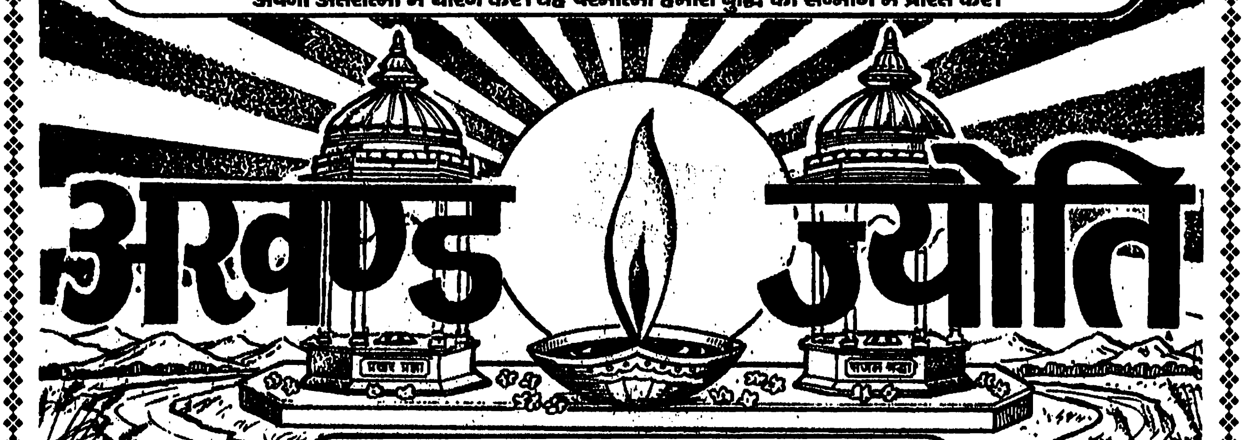

अखण्ड ज्योति

ॐ वन्दे भगवतीं देवीं श्रीरामञ्च जगद्गुरुम्।
पादपद्मे तयोः श्रित्वा प्रणमामि मुहुर्मुहुः ॥

संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा माता
भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
अखण्ड ज्योति संस्थान
घीयामंडी, मथुरा
दूरभाष नं० (0565) 2403940
2400865, 2402574
मोबाइल नं० 9927086291
7534812036
7534812037
7534812038
7534812039
फैक्स नं० (0565) 2412273
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस. एम. एस. न करें।
ईमेल-ajsansthan@awgp.org
प्रातः 10 से सायं 6 तक
वर्ष : 82
अंक : 11
नवंबर : 2018
कार्तिक-मार्गशीर्ष : 2075
प्रकाशन तिथि : 01.10.2018
वार्षिक चंदा
भारत में : 220/-
विदेश में : 1600/-
भारत में आजीवन (बीसवर्षीय) : 5000/-

इनसानियत

मनुष्य जब धरती पर आता है तो एक लक्ष्य, एक उद्देश्य लेकर आता है। चाहे वह उसे पूरा कर सके या न कर सके, पर हर व्यक्ति के जन्म लेने के साथ ही उसके जीवन का एक ध्येय, एक लक्ष्य, एक उद्देश्य साथ जुड़ जाता है। यदि हमारे जीवन का कोई लक्ष्य या उद्देश्य न होता तो हमारे जीवन में व जानवरों के जीवन में भारी अंतर नहीं रह जाता। पक्षियों के, पशुओं के जीवन के दो ही मुख्य उद्देश्य दिखाई पड़ते हैं—अपना पेट भर लेना और अपना परिवार बड़ा कर लेना। इसके अतिरिक्त कोई तीसरा उद्देश्य पशु जीवन का दिखाई नहीं पड़ता।

इसके विपरीत मनुष्य को चिंतन की, भावनाओं की, दृष्टिकोण की क्षमता परमात्मा ने देकर भेजा है। इन सब गुणों को, विशेषताओं को देने के पीछे परमात्मा का यह उद्देश्य था कि इनको उपयोग में लाकर इनसान अपने जीवनलक्ष्य को प्राप्त कर सके। इनसान का जीवनलक्ष्य इनसानियत के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता। मानव जीवन का उद्देश्य मानवता ही कहा जा सकता है। इसी को गोस्वामी तुलसीदास जी ने धर्म की परिभाषा के रूप में भी स्वीकार किया है—

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई, पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।

जिसे दूसरे की पीड़ा को देखकर स्वयं भी पीड़ा का अनुभव होता है, उसे देखकर ही यह कहा जा सकता है कि इसके भीतर इनसानियत है। यह इनसानियत की भावना ही हमें जानवरों से भिन्न करती है और हमें, हमारे जीवनलक्ष्य से परिचित कराती है। इसी को ध्यान में रखकर परमपूज्य गुरुदेव ने प्रज्ञा पुराण में लिखा है—

"परोपकाररहित मनुष्य के जीवन को धिक्कार है, उसकी तुलना में तो पशु श्रेष्ठ है—उसका कम-से-कम चमड़ा तो काम आ जाएगा, परंतु मानवतारहित मनुष्य का जीवन तो किसी के भी उपयोग का नहीं रहता। हमें इनसानियत को ही अपना जीवनलक्ष्य मानकर जीवन जीना चाहिए।" ☐

विषय सूची

- इनसानियत 3
- **विशिष्ट सामयिक चिंतन**
  बेजबानों की जबान बन जाएँ हम 5
- गायत्री की कुंडलिनी शक्ति 8
- ईश्वरभक्ति का अनुकरणीय पथ 11
- **पर्व विशेष**
  सर्वत्र मंगल का प्रतीक, दीपावली का त्योहार 13
- जीवन है अनमोल, खुशी से गुजारें 15
- **अंतर्जगत की यात्रा का ज्ञान-विज्ञान—4**
  प्रतिक्रिया नहीं, प्रतिसंवेदन करते हैं जीवनमुक्त पुरुष 17
- धैर्यपूर्वक सहने का नाम है तितिक्षा 19
- एकादशी व्रत की महिमा 21
- जीवन की सार्थकता का बोध 23
- गलतियाँ न करें, सजग जीवन जिएँ 25
- अद्‌भुत है ध्यान की महिमा 27
- बालों का है विशेष महत्त्व 29
- आध्यात्मिक चिंतन को उन्मुख होता जनमानस 31
- प्रकृति की पाठशाला में होता है सच्चा शिक्षण 33
- भावों से करें भगवान की पूजा 35
- **चेतना की शिखर यात्रा—194**
  युवा धर्म की परख 37
- चुनौतियों को सौभाग्य में बदलते सैनिक 40
- **ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—115**
  मोटापे पर योगाभ्यास का प्रभाव 42
- क्षमा की क्रोध पर विजय 44
- प्लास्टिक के कचरे की भयावह होती समस्या 46
- **युगगीता—222**
  कर्त्तापन के भाव से परे होता है गुणातीत पुरुष 48
- डायरी लेखन को बनाएँ जीवन का अभिन्न अंग 52
- और कोई हो न हो, पर मैं तुम्हारा हूँ 54
- **परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी—5**
  (अंतिम किस्त)
  अध्यात्म का वास्तविक स्वरूप 56
- **विश्वविद्यालय परिसर से—161**
  यज्ञ पर शोध के लिए की गई अनूठी पहल 61
- **अपनों से अपनी बात**
  इस प्राण-प्रवाह को अविरल बहने दें 63
- 'अगणित दीप जलाएँ हम' (कविता) 66

आवरण पृष्ठ परिचय

मनुष्य स्वयं है अपनी धरित्री का भाग्यविधाता

नवंबर-दिसंबर, 2018 के पर्व-त्योहार

शनिवार	03 नवंबर	रमा एकादशी
सोमवार	05 नवंबर	धनतेरस
मंगलवार	06 नवंबर	रूप चतुर्दशी
बुधवार	07 नवंबर	दीपावली/अमावस्या
गुरुवार	08 नवंबर	बेसतुबरस/अन्नकूट
शुक्रवार	09 नवंबर	भाई दूज
सोमवार	12 नवंबर	लाभ पंचमी
मंगलवार	13 नवंबर	सूर्य षष्ठी
बुधवार	14 नवंबर	बाल दिवस
शुक्रवार	16 नवंबर	गोपाष्टमी
शनिवार	17 नवंबर	अक्षय नवमी
सोमवार	19 नवंबर	देव प्रबोधिनी एकादशी
शुक्रवार	23 नवंबर	गुरुनानक जयंती/पूर्णिमा व्रत
सोमवार	03 दिसंबर	उत्पत्ति एकादशी
गुरुवार	13 दिसंबर	सूर्य षष्ठी
बुधवार	19 दिसंबर	मोक्षदा एकादशी/गीता जयंती
शनिवार	22 दिसंबर	दत्तात्रेय जयंती/पूर्णिमा
मंगलवार	25 दिसंबर	क्रिसमस

★ **यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे।** —*संपादक*

▶शक्ति संरक्षण वर्ष◀

विशिष्ट सामयिक चिंतन

बेजबानों की जबान बन जाएँ हम

परमात्मा द्वारा रचित इस सृष्टि का विस्तार अनंत है। इस विपुल विस्तार के संतुलन को बनाए रखने की जिम्मेदारी मनुष्य को प्रदान की गई है। चाहे आस्था की दृष्टि से देखें या विज्ञान की—परमात्मा ने मनुष्य को वह सब कुछ देकर भेजा है, जो किसी अन्य प्राणी को नसीब नहीं हुआ। चाहे मानवीय शरीर की अतुलनीय शारीरिक संरचना हो या उसका मानसिक विकास हो, अथवा धर्म-संस्कृति-विज्ञान-तकनीकी व अध्यात्म जैसी संभावनाओं को साकार करने की सामर्थ्य हो—मनुष्य को विधाता द्वारा कुछ ज्यादा व अतिरिक्त विशेषताएँ देकर के भेजा गया है।

इन विशेषताओं को मनुष्य को प्रदान करने के पीछे सृष्टिकर्त्ता के मन में कोई भेदभाव रहा होगा, ऐसा नहीं कहा जा सकता। इन विशेषताओं के मिलने के साथ ही, विधाता ने मनुष्य को एक महती जिम्मेदारी प्रदान कर दी है कि वह सृष्टि का संतुलन बनाए रखने में परमात्मा के सक्षम सहयोगी की भूमिका निभाए और उस संतुलन को बनाए रखने के लिए, जिस गुण से मनुष्य को नवाजा गया है उसका नाम है—संवेदना। भाव-संवेदनाएँ ही मनुष्य की आत्मिक प्रगति की सच्ची कसौटी हैं। मनुष्य यदि परोपकार की, संवेदना की विभूति से आभूषित नहीं है तो उसका जीवन मृतप्राय ही कहा जा सकता है। इनसान होकर यदि उसमें इनसानियत का अभाव है तो इसे मानवोचित नहीं कहा जा सकता।

इनसानियत का अर्थ मात्र दूसरे मनुष्यों के प्रति अपनी संवेदना की अभिव्यक्ति करना नहीं, बल्कि संपूर्ण जीव जगत, हर प्राणी, सृष्टि के प्रत्येक घटक के प्रति संवेदना की भावना रखना है। आज जब ऐसी घटनाएँ प्रचुरता से घटती दिखाई पड़ती हैं, जिनमें मनुष्य—दूसरे प्राणियों के प्रति हिंसक, क्रूर व्यवहार करता दिखाई पड़ता है तो शंका होने लगती है कि क्या मानव, मानवता को भुला ही चुका है ? क्या उसे अपने मानवोचित कर्त्तव्यों एवं ईश्वरप्रदत्त उत्तरदायित्वों का जरा-सा भी भान नहीं है ? पशुओं के प्रति विगत दिनों तेजी से बढ़ती क्रूरता की घटनाओं को देखकर तो कभी-कभी ऐसा ही लगने लगता है।

विगत दिनों बेंगलुरू में घटी एक घटना को देख कर तो ऐसा ही सोचने को मन विवश-सा हो जाता है। वहाँ एक महिला ने एक कुतिया को उसके घर के बाहर बच्चे जन्मने पर इतना मारा कि आस-पड़ोस के लोगों को उसे बचाने बीच में आना पड़ा। उसका अपराध मात्र इतना ही था कि उसने, उस महिला के घर के दरवाजे के सामने बच्चे जन्म दिए थे। क्रोध से पराधीन उस महिला ने एक-एक करके उस कुतिया के पंद्रह बच्चों को सड़क पर इतना पटककर मारा कि उनमें से प्रत्येक की मृत्यु हो गई। उन मृत शरीरों में से कुछ की तो आँतें तक बाहर आ गईं थीं।

यह दुष्कर्म उस नारी के द्वारा हुआ, जिसकी पहचान ही ममत्व के गुण से होती है। ऐसी घटना को देखकर कभी-कभी तो लगता है कि इनके भीतर मानवीय हृदय है भी या नहीं ? पुराणों-इतिहासों में वर्णित असुरों-राक्षसों के जैसे कृत्य बताए गए हैं, ये घटनाएँ कुछ वैसी ही मन:स्थिति को दरसाती हैं। कुछ ऐसी ही घटना एक मेडिकल कॉलेज के छात्रों द्वारा भी घटित हुई। मात्र अपने मनोरंजन के लिए और एक रोमांचक वीडियो अपने फेसबुक पेज पर डालने के भाव से, एक मेडिकल कॉलेज के दो छात्रों ने एक अबोध पशु को—एक कुत्ते को, मेडिकल कॉलेज की छत से नीचे फेंक दिया। फेंकते समय उनके मुख पर अपराध का जरा-भी बोध न था, बल्कि एक बर्बर प्रसन्नता के भाव छलक रहे थे। कल्पना करें कि ये मेडिकल के छात्र, आगे चलकर चिकित्सक बनेंगे तो क्या चिकित्सा के मूल गुण—मानवता से सुशोभित होंगे अथवा नहीं ?

शोध आँकड़े दरसाते हैं कि विगत कुछ वर्षों में पशुओं पर बढ़ते अत्याचार की खबरें आम हो गई हैं। कुत्ते, बिल्ली, घोड़े या अन्य पालतू पशु, इस बर्बरता के सबसे पहले शिकार होते हैं। सर्वेक्षण के अनुसार, पशुओं पर की जाने वाली बर्बरता में 70% कुत्ते, 21% बिल्लियाँ

व शेष में अन्य तरह के प्राणी सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त कई ऐसे अन्य माध्यम भी हैं, जिनमें पशु-पक्षी, जीव-जंतु सीधे-सीधे मानवीय बर्बरता के शिकार नहीं होते, पर तब भी मनुष्य ही उनके उत्पीड़न के लिए जिम्मेदार है।

विदेशों में प्रचलन में चल रहे फर के ऊनी कपड़ों को बनाने में प्रतिवर्ष 4 से 5 करोड़ पशुओं की हत्या की जाती है और इन पशुओं में रेकून, लोमड़ी, मिंक्स, खरगोश व चिंचिता जैसे प्राणी शामिल हैं। चीन में तो इन प्राणियों को मारने के लिए इनकी गरदन तोड़ने से लेकर, इनको बिजली के झटके देने, यहाँ तक की जहरीली गैस देने का भी प्रयोग किया जाता है। फिर साँप व घड़ियाल से लेकर, अन्य प्राणियों के चमड़े से बने बैग, बेल्ट जैसे उत्पादों को हम कैसे भूल सकते हैं? इन्हें उपयोग करते समय हम भूल जाते हैं कि हमारे शरीर पर चढ़े एक फर कोट या एक चमड़े के बैग को बनाने में कई जानवरों की अकारण ही बलि चढ़ी है।

जापान की सरकार या शिकारियों द्वारा प्रतिवर्ष हजारों की संख्या में डॉल्फिनों व ह्वेलों का मारा जाना हो अथवा दवाइयों को निर्मित करने के नाम पर प्रतिवर्ष 50 करोड़ से लेकर 1 अरब रीढ़धारी प्राणियों की प्रयोगशालाओं में मृत्यु—ऐसे अनेक उदाहरण हमारे सामने हैं, जो यह दरसाते हैं कि निरीह पशुओं पर अत्याचार किस गति से, विगत शताब्दी के अंदर बढ़े हैं। मात्र मांसाहार के लिए पूरे विश्व में एक वर्ष के भीतर 14 खरब प्राणियों का संहार कर दिया जाता है।

अकेले इंग्लैंड में जिसकी स्वयं की जनसंख्या 6 करोड़ के करीब है, वहाँ सन् 2009 में 2.5 अरब प्राणियों को मांसाहार के लिए समाप्त कर दिया गया, जिसमें 60 करोड़ के करीब मुरगे व अन्य पॉल्ट्री प्राणी, 30 करोड़ के करीब गाय-भैंस, भेड़, सूअर इत्यादि सम्मिलित हैं। अन्य प्राणियों में 1 अरब के करीब समुद्री प्राणी जिनमें मछलियाँ, ऑक्टोपस, ऑइस्टर जैसे प्राणी हैं, उनकी संख्या आती है। जिन प्राणियों को हम जीवन दे नहीं सकते, उनका जीवन मात्र हमारा पेट भरने के लिए छीन लेना—क्या इनसानियत के दायरे में आता है?

भोजन के रूप में प्राणियों का सेवन हो, या सुख-सुविधा-चिकित्सा के नाम पर उनकी हत्या, बर्बरता के सीधे घटनाक्रम हों या खेल-तमाशे के रूप में उनका इस्तेमाल—ये सारे घटनाक्रम इनसान की इनसानियत को चुनौती देते नजर आते हैं। सर्कस में, चिड़ियाघरों में एवं खेल के रूप में पशुओं के साथ दुर्व्यहार के एक नहीं, अनेकों ऐसे घटनाक्रम हैं, जो मानवता को शरमिंदा करने के लिए पर्याप्त हैं।

चाहे इंग्लैंड में कानूनन लोमड़ियों की हत्या करना हो या अफ्रीका की ट्रॉफी हंटिंग अथवा इंग्लैंड की मुरगी-लड़ाई या यूरोप की बुल फाइटिंग—कुछ लोगों के मनोरंजन के नाम पर प्रतिवर्ष 25 करोड़ जानवर, अकेले अमेरिका में मार दिए जाते हैं। सिनेमा में भी ऐसे घटनाक्रमों का दौर बढ़-सा चला है। चौंका देने वाले ये सभी आँकड़े, मानवीय दरिंदगी का एक शरमनाक उदाहरण बनकर सामने आते हैं।

ऐसा नहीं है कि इस संदर्भ में कानूनों की या नियमों की कमी है। मात्र भारत गणराज्य का संविधान देखें तो भारतीय कानून, प्रत्येक भारतीय नागरिक को हर प्राणी के प्रति करुणा का भाव रखने को कहता है। पशुओं की हत्या एक कानूनन जुर्म करार दी गई है। जानवरों के साथ बर्बरतापूर्ण आचरण करने पर अपराधियों के लिए 25000 रुपये के जुरमाने या सात वर्ष की सजा का प्रावधान है, पर इस कानून के अंतर्गत मात्र पोचर्स या पशुओं के चमड़ों के लिए उनकी हत्या करने वाले शिकारियों को ही सजा मिल पाती है। कदम-कदम पर विभिन्न तरीकों से पशुओं व निरीह प्राणियों पर अत्याचार करने वाले या तो कानून द्वारा नजरअंदाज कर दिए जाते हैं अथवा हम इतने असंवेदनशील हो गए हैं कि इन घटनाओं को घटते देखकर भी हम अपने मानवीय उत्तरदायित्व से विमुख हो जाते हैं।

सवाल मात्र पुलिस-प्रशासन द्वारा ऐसे लोगों की धरपकड़ का नहीं है। सवाल हमारी भाव-संवेदनाओं के पतन का है। नियम बनाकर फैमिली प्लानिंग कराई जा सकती है, परंतु ब्रह्मचर्य पैदा नहीं किया जा सकता। भावनाओं के प्रदूषण को दूर करने के लिए भावनात्मक प्रयासों की ही आवश्यकता है। आवश्यकता अपनी अंतरात्मा से यह पूछने की है कि हम कैसे इन अबोध प्राणियों पर अत्याचार होते देख सकते हैं, आवश्यकता स्वयं से यह सवाल करने की है कि यदि हम सर्वव्यापी ईश्वर से प्रेम करते हैं तो उसके अंश, जीवमात्र पर अत्याचार करने के अपराधी कैसे बन सकते हैं?

परमपूज्य गुरुदेव ने इसी चिंतन को ध्यान में रखकर गायत्री परिवार के उद्देश्य के रूप में मनुष्य के

भावनात्मक नवनिर्माण का लक्ष्य रखा था। मनुष्य की भावनाएँ यदि उत्कर्ष की दिशा में बढ़ चलें तो उसका व्यक्तित्व उज्ज्वल और अनुकरणीय बन जाता है। उत्कृष्ट चिंतन हर घड़ी इसी प्रयास में लगा रहता है कि किस प्रकार उसके गुण, कर्म, स्वभाव का स्तर श्रेष्ठतम बनाया जाए, ताकि विश्वकल्याण का पथ प्रशस्त हो सके। विश्व के कल्याण के मूल में प्राणिमात्र के प्रति करुणा-संवेदना ही तो केंद्रीय तत्त्व मानी जा सकती है।

युग-परिवर्तन के लिए जिस पूँजी की सबसे पहले व सबसे ज्यादा आवश्यकता है—वह भावना ही है। दूसरों में यह सद्भावना जगाना भी हमारा कर्त्तव्य बन जाता है। पशु-पक्षियों पर जो लोग अत्याचार करते हैं, उन्हें सत्पथ दिखाने की महान जिम्मेदारी यदि गायत्री परिवार के भावनाशील परिजन नहीं उठाएँगे तो कौन उठाएगा? जिस तरह पूरे भारत भर में, अपने परिजनों द्वारा गोशालाओं की स्थापना द्वारा गोवंश का संरक्षण-संवर्द्धन किया जा रहा है, तो वैसा ही एक करुणामय कदम—अन्य निरीह प्राणियों की सुरक्षा के दायित्व को उठाने का भी बन जाता है।

जहाँ-जहाँ गायत्री परिवार की गोशालाएँ चल रही हैं, यदि उन्हीं के साथ ऐसे कष्ट पा रहे पशु-पक्षियों, प्राणियों की सेवा के लिए एक छोटा-सा स्थान ढूँढ़ लिया जाए तो यह एक भटकी हुई मानवता के लिए सशक्त प्रेरणास्रोत का कार्य कर सकता है। महापुरुष सत्पथ पर स्वयं चलकर ही दूसरों के लिए उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। गायत्री परिवार के प्रत्येक कार्यकर्त्ता द्वारा ऐसा उदाहरण प्रस्तुत कर पाना सहजता से संभव है। गली-मुहल्लों में भटकते आवारा पशु हों या पैशाचिक प्रवृत्ति के मनुष्यों से पीड़ित प्राणी—इन सबमें ईश्वर के अंश को देखते हुए, हममें से प्रत्येक व्यक्ति उनकी सेवा-सुरक्षा के सामान्य कदमों को उठा सकता है और समूची मानवता के लिए एक अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत कर सकता है।

सूक्त वचन है कि—

प्रत्यहं प्रत्यवेक्षेत नरश्चरितमात्मनः।
किं नु मे पशुभिस्तुल्यं किं नु सत्पुरुषैरिति॥

अर्थात—मनुष्य को प्रतिदिन अपने आचरण का निरीक्षण करना चाहिए कि क्या मेरा आचरण पशुओं के समान है या सत्पुरुषों के समान।

जो लोग दुर्जनों की तरह से व्यवहार कर रहे हैं एवं प्राणिमात्र को संताप देते दिखाई पड़ते हैं, उन्हें स्वयं से इसी प्रश्न को पूछने की आवश्यकता है। पशु तो मरकर भी अपना चर्म किसी उत्पाद को बनाने में लगा जाते हैं और हम विधाता के राजकुमार कहलाने पर भी, जीवित पशुओं का चर्म छीनते दिखाई पड़ते हों तो मानवता के स्तंभ डगमगाते नजर आते हैं। क्रूरता के दंश से तड़पती मानवता को आज एक ऐसा ही सत्पथ दिखाने की आवश्यकता है और ऐसा कर पाना गायत्री परिवार के भावनासमृद्ध परिजनों द्वारा ही संभव है। आइए! आगे बढ़ें और एक कदम उन प्राणियों की रक्षा में लगाएँ, जिनमें खुद की सुरक्षा के लिए आवाज लगाने को जबान नहीं है। यदि उनका स्वर हम नहीं बन सकेंगे तो कौन बनेगा? ❑

एक बार गौतम बुद्ध राजपथ को छोड़कर कँटीली पगडंडी पर चल रहे थे तो लोगों को यह देखकर आश्चर्य हुआ। कारण पूछने पर भगवान बुद्ध बोले—"वत्स! जीवनरूपी इस पगडंडी पर सुख-दुःख, दोनों का ही भोग करना पड़ता है। सुखों से अधिक आसक्ति रखने पर और दुःखों से ज्यादा उद्विग्न होने पर जीवन की यात्रा कठिन ही नहीं, दुष्कर भी हो जाती है। ऐसे में आवश्यक हो जाता है कि रह-रहकर जीवन में दुःखों का अभ्यास कर लिया जाए; क्योंकि सुख-दुःख में सम भाव रखने से जीवनयात्रा सुगम हो जाती है। इसीलिए मैं सुखों का राजपथ त्यागकर इस कँटीली पगडंडी पर चल रहा हूँ।"

गायत्री की कुंडलिनी शक्ति

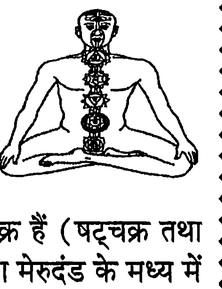

मानवीय काया के भीतर कुछ ऐसे मर्मस्थान सुरक्षित हैं, जो गुह्य आध्यात्मिक शक्तियों के केंद्र कहे जा सकते हैं। इन शक्तिकेंद्रों का जागरण मनुष्य को अपरिमित शक्ति भंडार का स्वामी बना देने में समर्थ है। इन मर्मस्थलों में से मेरुदंड या रीढ़ का स्थान प्रमुख है। जिस प्रकार इस भूमंडल का आधार मेरु पर्वत को माना गया है, उसी प्रकार मानवीय काया का शक्ति आधार भी मेरुदंड को कहा जा सकता है।

यह मेरुदंड तैंतीस अस्थिखंडों के जुटने से बना है, जिनका संबंध तैंतीस कोटि देवी-देवताओं की शक्ति से माना जाता रहा है। चिकित्सकीय दृष्टि से मेरुदंड के सर्वाइकल, डोर्सल, लंबर, सेक्रल इत्यादि भाग होते हैं और ये तैंतीस अस्थिखंड उन भागों में विभक्त माने जाते हैं। भारतीय साधना विज्ञान यह मानता है कि यह विभाजन अष्ट वसुओं, द्वादश आदित्यों, एकादश रुद्रों, इंद्र और प्रजापति की शक्तियों के बीज रूप में उपस्थित होने के कारण है।

शिव संहिता के द्वितीय पटल में भगवान शिव इस सत्य की उद्घोषणा करते हैं कि मानवीय काया, विश्व-ब्रह्मांड की ही प्रतिमूर्ति है और जितनी शक्तियाँ इस विश्व का संचालन करती हैं, वे ही शक्तियाँ मनुष्य शरीर में भी प्रतिष्ठित हैं और इसीलिए मनुष्य शरीर की गौरव-गरिमा का वर्णन, शास्त्रों में स्थान-स्थान पर देखने को मिलता है। श्रीमद्भागवत के द्वितीय स्कंध के प्रथम अध्याय में कहा गया है—

विशेषस्तस्य देहोऽयं स्थविष्ठश्च स्थवीयसाम्।
यत्रेदं दृश्यते विश्वं भूतं भव्यं भवच्च सत्॥

अर्थात—यह कार्यरूप संपूर्ण विश्व जो कुछ कभी था, है या होगा—सब-का-सब जिसमें दिखाई पड़ता है, वही भगवान का स्थूल-से-स्थूल और विराट शरीर है अर्थात इसी मनुष्य शरीर के भीतर विश्व-ब्रह्मांड की सभी शक्तियाँ विद्यमान हैं।

इसी में आगे कहा गया है कि मनुष्य शरीर के ऊपरी भाग में स्थित सात लोक ही गायत्री मंत्र की सप्त व्याहृतियाँ या दूसरे शब्दों में सप्त चक्र हैं (षट्चक्र तथा सहस्रार)। इन चक्रों का जागरण तथा मेरुदंड के मध्य में स्थित कुंडलिनी शक्ति का अभ्युदय—गायत्री मंत्र में निहित शक्ति के द्वारा ही संभव हो पाता है। इसी को कुंडलिनी योग या लययोग कहते हैं। जगदाधार महाशक्ति ही कुंडलिनी के रूप में मनुष्य शरीर में वास करती हैं तथा इनका प्रवाह, शरीर में अवस्थित 72000 नाड़ियों के माध्यम से होता है। इनमें से भी 14 नाड़ियाँ प्रमुख कही गई हैं और उनमें से भी प्रधान नाड़ियाँ तीन ही हैं—1.इड़ा, 2. पिंगला एवं 3. सुषुम्ना। ये नाड़ियाँ मनुष्य के स्थूल नहीं, वरन सूक्ष्मशरीर से संबंध रखती हैं और इनका सीधा संबंध मानवीय शक्ति के जागरण अथवा उसके चरमोत्कर्ष से है।

इड़ा नाड़ी मेरुदंड के बाईं ओर से तथा पिंगला नाड़ी, मेरुदंड के दाईं ओर से लिपटी हुई है। इनमें से इड़ा को निगेटिव और पिंगला को पोजिटिव विद्युत प्रवाह भी कह सकते हैं। तंत्र विज्ञान इनको क्रमशः चंद्र एवं सूर्य नाड़ी कहकर भी पुकारता है। इन दोनों विद्युत प्रवाहों के मिलने से जो शक्ति उत्पन्न होती है, वह सुषुम्ना नाड़ी कहलाती है—जो मेरुदंड के भीतर स्थित है तथा मूलाधार से लेकर सहस्रदलकमल तक जाती है।

सुषुम्ना नाड़ी के भीतर भी एक त्रिवर्ग है, जिसमें तीन सूक्ष्मधाराएँ प्रवाहित होती हैं, जो क्रमशः वज्रा, चित्रणी तथा ब्रह्म नाड़ियाँ कहलाती हैं। इनमें से ब्रह्मनाड़ी, सूक्ष्मतम है तथा वही नाड़ी सहस्रार के केंद्र में स्थित ब्रह्मरंध्र पर पहुँचकर कमल के पत्तों की तरह अनेक भागों में खिल जाती है। इसी से ब्रह्मकमल शब्द की उत्पत्ति हुई है। सुषुम्ना नाड़ी का ऊर्ध्व भाग ब्रह्मकमल के रूप में परिलक्षित होता है तो उसका निम्न भाग, मेरुदंड के अंतिम भाग के समीप स्थित एक काले षट्कोण वाले परमाणु से लिपटकर बँधा हुआ है, जिसे आध्यात्मिक भाषा में 'कूर्म' कहकर पुकारा गया है। कूर्म से ब्रह्मनाड़ी के गुंथनस्थल को ही साधना विज्ञान में 'कुंडलिनी' कहकर पुकारा गया है।

इस कुंडलिनी शक्ति को अनेक गुह्य शक्तियों की तिजोरी कहकर वर्णित किया गया है और चक्रों को इस तिजोरी के ऊपर लगे तालों के रूप में समझा जा सकता है। इन तालों को खोलने पर या इन चक्रों का वेधन करने पर आध्यात्मिक शक्ति के शीर्ष या कुंडलिनी शक्ति को जगाने का प्रयत्न किया जाता है।

ये षट्चक्र एक प्रकार की सूक्ष्मग्रंथियाँ हैं, जो ब्रह्मनाड़ी के मार्ग पर बनी हुई हैं। इन चक्रों में उपस्थित तत्त्व की प्रधानता के आधार पर इनका रंग या वर्ण भी भिन्न-भिन्न अनुभव होता है। इन चक्रों से जब प्राणवायु या प्राणशक्ति प्रवाहित होती है तो यह जिस तरह के आकार का निर्माण करती हुई जाती है, वह किन्हीं-किन्हीं अक्षरों से मेल खाता है और इसलिए ये चक्रों के अक्षर कहलाते हैं। प्राणशक्ति के आवागमन के कारण, एक तरह का स्वर भी इन चक्रों से शक्ति के प्रवाह के होने पर उत्पन्न होता है, इसे चक्रों का बीज कहकर पुकारते हैं।

इनमें से प्रत्येक चक्र के अपने एक देवी-देवता हैं, जो उस चक्र के जागरण पर या वेधन पर, निर्धारित विभूति या गुण से साधक को अनुगृहीत करते हैं। इस विषयाधार को समझ लेने पर चक्रों के विषय में दिए गए शास्त्र विवरण को समझ लेना सहज हो जाता है। यों तो अनेक ग्रंथ, तंत्र शास्त्र से लेकर योग विज्ञान तक कुंडलिनी शक्ति एवं षट्चक्रों का अपने-अपने तरीके से आलंकारिक वर्णन करते हैं, तथापि परमपूज्य गुरुदेव द्वारा लिखित 'गायत्री महाविज्ञान' में वर्णित षट्चक्रों का विवरण सबसे ज्यादा समग्र, सरल एवं स्पष्ट कहा जा सकता है। पाठकों की सुविधा के लिए उसके सार को यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है, परंतु जो साधक गंभीर एवं विस्तृत ज्ञान के पिपासु हों उन्हें गायत्री महाविज्ञान का विस्तार से अध्ययन अवश्य ही कर लेना चाहिए। ये चक्र कुछ इस प्रकार हैं—

मूलाधार चक्र—स्थान-योनि। वर्ण-लाल। लोक-भूलोक। दलों के अक्षर—वँ, शँ, षँ, सँ। तत्त्व-पृथ्वी। बीज-लँ। वाहन-ऐरावत। गुण-गंध। देवशक्ति-डाकिनी। यंत्र-चतुष्कोण। ज्ञानेंद्रिय-नासिका। कर्मेंद्रिय-गुदा। ध्यान का फल-वक्ता, आरोग्य, विद्याविनोदी, काव्य और लेखन की सामर्थ्य।

स्वाधिष्ठान चक्र—स्थान-पेड़ू। दल-छह। वर्ण-संदूर। लोक-भुवः। दलों के अक्षर-बँ, भँ, मँ, यँ, रँ, लँ। तत्त्व-जल। बीज-बँ। वाहन-मगर। गुण-रस। देव-विष्णु। देवशक्ति-डाकिनी। यंत्र-चंद्राकार। ज्ञानेंद्रिय-रसना। कर्मेंद्रिय-लिंग। ध्यान का फल-अहंकारादि विकारों का नाश, मोहनिवृत्ति, रचनात्मक शक्ति।

मणिपूर चक्र—स्थान-नाभि। दल-दस। वर्ण-नील। लोक-स्वः। दलों के अक्षर-डं, ढं, णं, तं, थं, दं, धं, नं, पं, फं। तत्त्व-अग्नि। बीज-रं। वाहन-मेढ़ा। गुण-रूप। देव-वृद्ध रुद्र। देवशक्ति-शाकिनी। यंत्र-त्रिकोण। ज्ञानेंद्रिय-चक्षु। कर्मेंद्रिय-चरण। ध्यान का फल—संहार और पालन की सामर्थ्य, वचनसिद्धि।

अनाहत चक्र—स्थान-हृदय। दल-बारह। वर्ण-अरुण। लोक-महः। दलों के अक्षर-कं, खं, गं, घं, चं, छं, जं, झं, ञं, टं, ठं। तत्त्व-वायु। देवशक्ति-काकिनी। यंत्र-षट्कोण। ज्ञानेंद्रिय-त्वचा। कर्मेंद्रिय-हाथ। ध्यान का फल-स्वामित्व, योगसिद्धि, ज्ञान जाग्रति, इंद्रियजय, परकाया प्रवेश।

विशुद्धि चक्र—स्थान-कंठ। दल-सोलह। वर्ण-धूम्र। लोक-जनः। दलों के अक्षर-अ से लेकर अः तक। तत्त्व-आकाश। बीज-हं। वाहन-हाथी। गुण-शब्द। देव-पंचमुखी सदाशिव। देवशक्ति-शाकिनी। यंत्र-शून्य, गोलाकार। ज्ञानेंद्रिय-कर्ण। कर्मेंद्रिय-पाद। ध्यान का फल-चित्तशांति, त्रिकालदर्शित्व, दीर्घजीवन, तेजस्विता, सर्वहितपरायणता।

आज्ञा चक्र—स्थान-भ्रूमध्य। दल-दो। वर्ण-श्वेत। दलों के अक्षर-हं, क्षं। तत्त्व-मह तत्त्व। बीज-ॐ। वाहन-नाद। देव-ज्योतिर्लिंग। देवशक्ति-हाकिनी। यंत्र-लिंगाकार। लोक-तपः। ध्यान का फल-सर्वार्थसाधन।

यद्यपि योगशास्त्रों में षट्चक्रों का ही वर्णन है तथापि कतिपय साधना विधियों में सहस्रार या सहस्रदल कमल को भी सातवाँ चक्र माना गया है। उसका वर्णन परमपूज्य गुरुदेव ने गायत्री महाविज्ञान में निम्नानुसार किया है—

सहस्रार या शून्य चक्र—स्थान-मस्तक। दल-सहस्र। दलों के अक्षर-अं से क्षं तक की पुनरावृत्तियाँ। लोक-सत्य। तत्त्वों से अतीत। बीज तत्त्व—(:) विसर्ग। बीज का वाहन-बिंदु। देव-परब्रह्म। देवशक्ति-महाशक्ति। यंत्र-पूर्ण चंद्रवत्। प्रकाश-निराकार। ध्यान का फल-भक्ति, अमरता, समाधि, समस्त ऋद्धि-सिद्धियों का करतलगत होना।

कुंडलिनी शक्ति ही आध्यात्मिक शक्ति का केंद्र है, उसके जागरण से जो शक्तियाँ हस्तगत होती हैं, उनका

अनुमान कर पाना भी हमारे लिए सहजता से संभव नहीं हो सकता। कुंडलिनी शक्ति के जागरण के लिए षट्चक्रों के वेधन का मार्ग शास्त्र बताते रहे हैं। इनमें से सभी अपनी-अपनी दृष्टि से लाभकारी हैं, परंतु गायत्रीसाधकों के लिए तो पूज्य गुरुदेव द्वारा वर्णित साधना-पथ ही श्रेयस्कर है।

उनके द्वारा निर्दिष्ट पथ का पालन करते हुए साधना के पथ पर आगे बढ़ने वाले साधक, कभी खाली हाथ नहीं रहते एवं कुंडलिनी शक्ति का जागरण कर अपने जीवन को सफल एवं शक्तिमान बनाते हैं। शक्ति संरक्षण वर्ष में इसी आध्यात्मिक शक्तिकेंद्र को जाग्रत करने का प्रयत्न गायत्रीसाधकों को करना चाहिए। ❑

सफलता का श्रेय किसे मिले, इस प्रश्न पर एक दिन विवाद उठ खड़ा हुआ। संकल्प ने अपने को, बल ने अपने को और बुद्धि ने अपने को सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण बताया। तीनों अपनी-अपनी बात पर अड़े हुए थे। अंत में तय हुआ कि विवेक को सरपंच बनाकर इस झगड़े का फैसला करा लिया जाए। विवेक तीनों को साथ लेकर चला। उसने एक हाथ में लोहे की टेढ़ी कील ली और दूसरे में हथौड़ा। चलते-चलते वे लोग एक ऐसे स्थान पर पहुँचे, जहाँ एक सुंदर बालक खेल रहा था। विवेक ने बालक से कहा—"बेटा! अगर तुम इस टेढ़ी कील को हथौड़े से ठोंककर सीधी कर दो तो मैं तुम्हें भरपेट मिठाई और खिलौने से भरी एक पिटारी दूँगा।"

यह सुनकर बालक की आँखें चमक उठीं। वह बड़ी आशा और उत्साह से प्रयत्न करने लगा, परंतु कील को सीधा करना तो दूर की बात, उससे हथौड़ा उठा तक नहीं। भारी औजार उठाने के लायक बल उसमें नहीं था। बहुत प्रयत्न करने पर सफलता न मिली तो बालक खिन्न होकर चला गया। इससे उन लोगों ने यह निष्कर्ष निकाला कि सफलता प्राप्त करने के लिए अकेला संकल्प पर्याप्त नहीं है। चारों आगे बढ़े तो थोड़ी दूर पर एक श्रमिक दिखाई पड़ा। वह खर्राटे लेकर सो रहा था। विवेक ने उसे झकझोर कर उठाया और कहा—"अगर तुम इस कील को हथौड़ा मारकर सीधा कर दो तो मैं तुम्हें दस रुपये दूँगा।" उस श्रमिक ने उनींदी आँखों से कुछ प्रयत्न किया, पर वह नींद की खुमारी में बना रहा। उसने हथौड़ा एक ओर रख दिया और वहीं लेटकर खर्राटे भरने लगा। अब सबने निष्कर्ष निकाला कि यह बुद्धि होते हुए भी कि इतना आसान कार्य करने पर उसको लाभ होगा, वह श्रमिक उस कील को सीधा न कर सका; क्योंकि उसमें संकल्प का अभाव था। सबको यह बात समझ में आ गई कि संकल्प, बल और बुद्धि सम्मिलित रूप से ही सफलता दिला सकते हैं। एकाकी रूप से तीनों अपूर्ण हैं।

ईश्वरभक्ति का अनुकरणीय पथ

पुराणों में सोमशर्मा नामक एक धर्मपरायण एवं सच्चे ईश्वरभक्त व्यक्ति की कथा आती है। उनकी पत्नी सुमना भी अपने पति के मार्ग का हृदय से अनुकरण किया करती थीं। उनके पुत्र सुव्रत अपने माता-पिता सुमना एवं सोमशर्मा की तरह ही ईश्वर में अप्रतिम अनुराग रखते थे। कहते हैं सोमशर्मा व सुमना की सच्ची ईश्वरभक्ति व तप, त्याग के कारण ही उन्हें सुव्रत जैसा पुत्र प्राप्त हुआ था।

सुव्रत पूर्वजन्म में धर्मांगद नामक भक्त राजकुमार थे। पूर्वजन्म के अभ्यासवश बाल्यावस्था से ही वे भगवान का चिंतन और ध्यान करने लगे थे। वे जब बालकों के साथ खेलते, तब अपने साथी बालकों को भगवान के ही नामों जैसे—हरि, गोविंद, मुकुंद, माधव आदि से पुकारते थे। उन्होंने अपने सभी मित्रों के नाम भगवान के नामानुसार ही रख लिए थे। वे कहते—भैया केशव, माधव, चक्रधर! आओ। पुरुषोत्तम! आओ। हम लोग खेलें। मधुसूदन! मेरे साथ चलो। खेलते-गाते, पढ़ते-लिखते, हँसते-बोलते, सोते-जागते, खाते-पीते, देखते-सुनते, सभी समय वे भगवान को ही अपने सामने देखा करते।

घर-बाहर, ध्यान में, ज्ञान में—सभी गतिविधियों में उन्हें सभी जगह भगवान के दर्शन होते और वे उन्हीं को पुकारा करते। तृण, काठ तथा सूखे-गीले सभी पदार्थों में वे पद्मपलाशलोचन भगवान श्रीहरि की झाँकी ही देखा करते। जल-थल, आकाश-पृथ्वी, वन-पहाड़, जड़-चेतन, जीवमात्र में वे भगवान के सुंदर मुखारविंद की छवि देख-देखकर निहाल होते रहते थे। लड़कपन में ही वे गाना सीख गए थे और प्रतिदिन लय-ताल के साथ मधुर स्वर से भगवान के गुण गा-गाकर भगवान श्रीकृष्ण के प्रति अपना अनुराग बढ़ाते थे।

जो भजन वे गाया करते, उसके शब्द कुछ इस प्रकार थे—वेद को जानने वाले लोग निरंतर जिनका ध्यान करते हैं, जिनके एक-एक अंग में अनंतकोटि ब्रह्मांड स्थित हैं, जो सारे पापों का नाश करने वाले हैं, मैं उन योगेश्वर, मधुसूदन भगवान की शरण में हूँ। जो सब लोकों के स्वामी हैं, जिनमें सब लोक निवास करते हैं, मैं उन सर्वदोषरहित परमेश्वर के चरण-कमलों में निरंतर नमस्कार करता हूँ। जो दिव्य गुणों के भंडार हैं, अनंत शक्तिसंपन्न हैं, इस अगाध और अनंत सागर से तरने के लिए मैं उन श्रीनारायणदेव की शरण में जाता हूँ। जो योगिराजों के मानस-सरोवर के राजहंस हैं, जिनका प्रभाव और माहात्म्य सदा और सर्वत्र विस्तृत है, मैं उन परमेश्वर के चरणों की वंदना करता हूँ।

इस प्रकार श्रवण, मनन, निदिध्यासन, गायन आदि करते हुए सुव्रत हाथों से ताली बजा-बजाकर नाचते और बच्चों के साथ खेलते-खेलते ईश्वर के आनंद में मग्न हो जाते। यही उनका नित्य प्रसंग था। वे इस तरह भगवान के ध्यान में मग्न, मस्त हुए बच्चों के साथ खेलते रहते। खाने-पीने की भी उन्हें सुधि नहीं रहती। तब माता सुमना पुकारकर कहतीं—"बेटा! तुम्हें भूख लगी होगी। देखो, भूख के मारे तुम्हारा मुख कुम्हला रहा है। आओ, जल्दी कुछ खा लो।"

माँ की बातें सुनकर सुव्रत कहते—"माँ! श्रीहरि के ध्यान में जो अमृत-रस झरता है, मैं उसी को पी-पीकर तृप्त हो रहा हूँ।" जब माँ उन्हें जबरन बुला लातीं और वे खाने को बैठते, तब अन्न को देखकर कहते—"यह अन्न भगवान ही है, आत्मा अन्न के आश्रित है। आत्मा भी तो भगवान ही है। इस अन्नरूपी भगवान से आत्मारूप भगवान तृप्त हों। जो सदा क्षीरसागर में निवास करते हैं, वे भगवान इस भगवत्स्वरूप जल से तृप्त हों।"

धर्मात्मा सुव्रत जब सोते, तब श्रीकृष्ण का चिंतन करते हुए कहते—"मैं योगनिद्रासंपन्न भगवान श्रीकृष्ण की शरण में हूँ। इस प्रकार खाने-पहनने, सोने-जागने, उठने-बैठने आदि सभी कार्यों में वे श्रीभगवान का स्मरण करते और उन्हीं को सब कुछ निवेदन करते। वे जब युवा हुए तब सारे विषय-भोगों का त्याग करके नर्मदा जी के तट पर रहने चले गए और वहाँ भगवान के ध्यान में लग गए। इस प्रकार तपस्या करते-करते जब सौ वर्ष बीत गए, तब कहते हैं कि साक्षात् श्रीहरि विष्णु, लक्ष्मी जी सहित प्रकाश रूप में उनके सम्मुख प्रकट हुए।

भगवान का वह रूप अत्यंत मनभावन था। उनके सुंदर नील-श्याम शरीर पर दिव्य पीतांबर और आभूषण शोभा पा रहे थे। उनके तीन हाथों में शंख, चक्र और गदा सुशोभित थे। चौथे करकमल से भगवान अभय मुद्रा के द्वारा भक्त सुव्रत को निर्भय कर रहे थे। उन्होंने कहा—"वत्स सुव्रत! उठो, तुम्हारा कल्याण हो। देखो! मैं स्वयं तुम्हारे सामने उपस्थित हूँ। वर माँगो!" श्रीभगवान की दिव्यवाणी सुनकर सुव्रत ने आँखें खोलीं और अपने सामने स्वयं श्रीभगवान को देखकर वे उन्हें देखते ही रह गए। आनंद के आवेश से उनका सारा शरीर पुलकित हो उठा। उनके नेत्रों से आनंदाश्रुओं की झड़ी लग गई और वे मात्र इतना बोले—"भगवन्! आपके दर्शनों से ही मेरा कल्याण हो गया। किसी और वर की मुझे जरूरत नहीं।"

सच ही कहा गया है कि यदि जीवन का पल-पल ईश्वर के चिंतन में ही बीते; तप, त्याग, ध्यान आदि की निरंतरता बनी रहे तो चितशुद्धि अवश्यंभावी है और चित्तशुद्धि होते ही भगवान की झलक-झाँकी, उनका दिव्यदर्शन व अनुग्रह अवश्य प्राप्त होता है। इसमें कुछ भी संशय नहीं है। यदि हम भी ईश्वर की झलक-झाँकी पाना चाहते हैं, हर पल उन्हें अपनी आत्मा में अनुभव करना चाहते हैं तो हमें भी भक्त सुव्रत जैसे जीवनमार्ग का अनुकरण करना होगा। ☐

महापराक्रमी और पुण्यात्मा विद्रुध समयानुसार दिवंगत हुए और अपने सत्कर्मों के फलस्वरूप स्वर्ग में सुखों का भोग करने लगे। सुख-साधन बहुत और परमार्थ के अवसर नगण्य—ऐसे स्वर्ग में उनका दम घुटने लगा। आत्मा को सुख से नहीं, पुण्य से शांति मिलती है। "जहाँ सुख हो, पर पुण्य करने का संतोष लाभ न मिले, ऐसे स्वर्ग में रहकर मैं क्या करूँगा?"—यह चिंता उन्हें निरंतर सताने लगी। उन्हें खिन्न देखकर देवराज इंद्र ने उनसे उनकी खिन्नता का कारण पूछा तो उन्होंने उनसे अपने मन की व्यथा कह सुनाई। बोले—"मुझे सुख नहीं, शांति चाहिए। मैं विलास नहीं, परमार्थ की कामना रखता हूँ।"

उनकी इस पुनीत अभिलाषा को देवगुरु बृहस्पति ने बहुत सराहा और कहा—"सुख-सुविधा से भरे हुए स्वर्ग की अपेक्षा तपस्वियों का तपलोक अधिक श्रेष्ठ है। विद्रुध देवताओं से अधिक श्रेष्ठ हैं, इसलिए उन्हें वहाँ भेजा जाए, जहाँ पुण्य-परमार्थ और सेवा-साधना के ज्यादा अवसर उपलब्ध हैं। ऐसा तपलोक ही श्रेष्ठ आत्माओं के लिए उपयुक्त है।" सभा में उपस्थित देवताओं ने पूछा—"तपलोक कहाँ है देवगुरु?" देवगुरु ने कहा—"मनुष्यलोक ही तपलोक है। उच्चकोटि के देवता वहाँ निवास करते हैं। सेवा और संयम से प्राप्त होने वाला संतोष इस स्वर्ग में कहाँ! वह अवसर तो केवल भूलोक के निवासी मनुष्यरूपी देवताओं को ही उपलब्ध है।" विद्रुध की महानता के आगे देवताओं के मस्तक झुक गए। पुण्य-परमार्थ का संतोष लाभ करने के लिए पुनः भूलोक भेज दिया गया। लौटने पर उन्होंने पश्चात्ताप का नहीं, प्रसन्नता का ही अनुभव किया।

पर्व विशेष

सर्वत्र मंगल का प्रतीक दीपावली का त्योहार

पर्व-त्योहारों की शृंखला में दीपावली सबसे बड़ा पर्व है; क्योंकि इस पर्व में एक साथ पाँच त्योहार मनाए जाते हैं, इस त्योहार को मनाने के लिए लोगों को पाँच दिन का अवकाश भी मिल जाता है, इसलिए लोग बड़े ही धूम-धाम से दीपावली उत्सव मनाते हैं। इस वर्ष धनतेरस 5 नवंबर, रूप चतुर्दशी 6 नवंबर, दीपावली पर्व 7 नवंबर, गोवर्धन पूजा 8 नवंबर व भाई दूज 9 नवंबर के दिन हैं।

दीपावली पर्व का आरंभ कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी अर्थात धनतेरस से होता है। इस दिन को धन त्रयोदशी के नाम से भी जाना जाता है। यह दिन आयुर्वेद के देवता का जन्मदिवस भी है, इसलिए यह दिन धन्वंतरि त्रयोदशी या धन्वंतरि जयंती के रूप में भी मनाया जाता है। इस दिन एक ओर भगवान धन्वंतरि का पूजन करके स्वास्थ्य की कामना की जाती है तो वहीं लोग दूसरी ओर लक्ष्मी-कुबेर का पूजन करके धन-समृद्धि की स्थिरता की कामना भी करते हैं।

वर्तमान युग में स्वास्थ्य को सबसे बड़ा धन माना गया है। यही सत्य भी है; क्योंकि हमारे समस्त धर्माचरण का साधन भी हमारा शरीर ही है। शरीर के जीवित ना होने पर निधन शब्द का प्रयोग किया जाता है, इसलिए धनतेरस के दिन स्वास्थ्य में वृद्धि की प्रार्थना की जाती है। इस दिन लोग अपनी सामर्थ्य के अनुसार, बरतन, सोने-चाँदी के आभूषण व सिक्के, लक्ष्मी-गणेश की मूर्तियाँ व अन्य उपयोगी सामान खरीदकर उन्हें घर लाते हैं। यह सामान धन के प्रतीक के रूप में होता है और धनतेरस के अवसर पर उसका पूजन भी किया जाता है। इसके अतिरिक्त लोग अपने-अपने घर के मुख्य द्वार पर यमराज के निमित्त तेल का दीपक जलाकर रखते हैं। इस दीपक को यम-दीपक भी कहते हैं, ताकि परिवार के किसी सदस्य की असामयिक मृत्यु न हो।

इसके अगले दिन कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी को 'रूप चतुर्दशी' या छोटी दीवाली मनाई जाती है। इस दिन को 'नरक चतुर्दशी' यानी नरक से मुक्ति पाने वाला त्योहार भी कहते हैं; क्योंकि इसी दिन भगवान श्रीकृष्ण ने नरकासुर नामक राक्षस का वध किया था। इस दिन सौंदर्यरूप भगवान श्रीकृष्ण की पूजा की जाती है, ताकि हम भी निष्कलुष व रूपवान हो सकें। इस दिन सूर्योदय से पूर्व उठकर स्नान करने का विशेष महत्त्व होता है एवं रात्रि में यमदेव की प्रसन्नता हेतु घर की देहली पर दीए जलाने की भी परंपरा है।

इसके अगले दिन कार्तिक कृष्ण अमावस्या के दिन बड़ी दीवाली यानी दीपावली मनाई जाती है। यह दिन पंचोत्सवों के बीच एक महोत्सव का होता है, इसलिए बहुत दिनों पहले से ही इस त्योहार की तैयारी शुरू कर दी जाती है। घरों की साफ-सफाई, दीवारों पर नए रंग की पुताई और घरों की विशेष सजावट की जाती है, घर के द्वार पर रंगोली बनाई जाती है। इस दिन हर तरफ नवीनता व सुंदरता देखने को मिलती है। रात्रि में विशेष रूप से माँ लक्ष्मी, माँ सरस्वती व भगवान गणपति का पूजन किया जाता है, मिट्टी के दीए जलाए जाते हैं, भाँति-भाँति के पकवान व मिठाइयों का भगवान को भोग लगाया जाता है और प्रसाद का सभी में वितरण किया जाता है। लोग इस दिन आतिशबाजी करने से भी नहीं चूकते, पटाखे, फुलझड़ियाँ जलाते हैं और खुशियाँ मनाते हैं। इस दिन घर के हर कोने को प्रकाशित किया जाता है, ताकि माँ लक्ष्मी प्रसन्न होने के साथ-साथ अपनी कृपा सब पर बरसाएँ।

यों तो दीपावली पर्व ऊर्जा, प्रकाश व उत्साह का त्योहार है, फिर भी इस पर्व में माँ लक्ष्मी के साथ भगवान गणपति व माँ सरस्वती के पूजन के पीछे यह मर्म है कि हम सद्बुद्धि व सद्विवेक को धारण करें, तभी लक्ष्मी माता की कृपा हम पर बनी रहेगी। यदि व्यक्ति सद्बुद्धि व सद्विवेक को नहीं अपनाता और अपने धन का दुरुपयोग करता है, अशुभ कार्यों में उसे खरच करता है तो उससे माँ लक्ष्मी रुष्ट हो जाती हैं और फिर वह चाहे कितना भी धनवान हो, धीरे-धीरे वह निर्धन होने लगता है। इसलिए सद्बुद्धि व सद्विवेक का इस्तेमाल करते

हुए हमें धन का सदुपयोग करना चाहिए। इसके साथ ही इनका सम्मिलित पूजन इस वैदिक परंपरा का भी प्रतीक है कि अर्थ का उपार्जन धर्मपरायण होकर ही करना चाहिए। इसीलिए श्री की प्रतीक माँ लक्ष्मी एवं विवेक के प्रतीक भगवान गणेश का साथ-साथ पूजन किया जाता है।

देखा जाए तो दीपावली पर्व का स्वागत हम स्वच्छता व साफ-सफाई से करते हैं, लेकिन दीपावली पर्व के दिन लोग आतिशबाजी में इतने पटाखे फोड़ते हैं कि उनके शोर से ध्वनि-प्रदूषण होता है। ऐसे में हृदय रोग से पीड़ित लोगों को घातक हृदयाघात तक हो सकता है, इसलिए विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता है। पटाखों से केवल शोर ही नहीं होता, बल्कि पटाखे जलने से हानिकारक गैसें भी वायुमंडल में घुल-मिल जाती हैं, जिससे वायु-प्रदूषण होता है और इसके साथ हमारे आस-पास फोड़े गए पटाखों का ढेर सारा कचरा भी इकट्ठा हो जाता है।

ऐसा पाया गया है कि दीपावली की रात्रि के दूसरे दिन महानगरों में वायु-प्रदूषण इतना बढ़ जाता है कि इससे बच्चों व वृद्ध लोगों के स्वास्थ्य पर गहरा असर पड़ने लगता है। विगत दिनों दीपावली के अवसर पर हुए वायु-प्रदूषण के कारण कुछ नगरों में विद्यालयों को बंद तक करना पड़ा, ताकि बच्चे प्रदूषित वायु के संपर्क में आने से बचें। यदि पटाखों से इतना ज्यादा नुकसान होता है कि उससे जन-जीवन प्रभावित होता है, तो ऐसी परंपराओं को बंद कर देना चाहिए और यह याद रखना चाहिए कि दीपावली प्रकाश का त्योहार है, आगजनी या विस्फोटों का नहीं।

इस दिन हमारे परिवार के बच्चे, युवा सभी ज्यादा आवाज करने वाले पटाखे छोड़ने की प्रतिस्पर्धा में लगे रहते हैं, जिसके कारण इस व्यापक समस्या का सटीक समाधान संभव नहीं हो पाता है। इसलिए यह ध्यान रखें कि हमें केवल व्यक्तिगत समृद्धि की कामना नहीं करनी चाहिए, बल्कि अपने पर्यावरण को भी समृद्ध बनाने का प्रयास करना चाहिए और यह तभी संभव है, जब दीपावली जैसे बड़े पर्व पर लोग सामूहिक समझदारी का परिचय दें, आतिशबाजी पर रोक लगाएँ और पर्यावरण को पुष्ट करती दीपावली मनाएँ। प्रकाश तो फैलाएँ, लेकिन प्रदूषण नहीं। मधुरता बाँटें, खटास नहीं। स्वच्छता रखें, गंदगी व कचरा नहीं।

दीपावली में केवल एक दीया नहीं होता, बल्कि दीपकों की कतार होती है। ये एक तरह से अंतर्मन के प्रकाशित होने व हमें संघबद्ध होकर रहने की प्रेरणा देते हैं। उपनिषद् में कहा गया है कि **'तमसो मा ज्योतिर्गमय', 'असतो मा सद्गमय', 'मृत्योर्मा अमृतम् गमय'**—अर्थात हमारा जीवन अंधकार से प्रकाश की ओर चले, असत् से सत् की ओर चले और मृत्यु से अमरता की ओर चले।

अंधकार से घिरा हुआ व्यक्ति भटक जाता है, असत् राह की ओर चलता है, मृत्यु की ओर अपने कदम बढ़ाता है, लेकिन यदि प्रकाश का स्रोत उसके साथ है तो वह गहन तिमिर अंधकार को भी पार करके अपनी मंजिल की ओर बढ़ता है, सत् की ओर व अमरता की ओर अपने कदम बढ़ाता है। इसलिए प्रकाश का एक दीया हमें अपने अंतर्मन में भी स्थापित करना चाहिए, यानी प्रकाशरूप परमेश्वर का अपने अंतर्मन में ध्यान करना चाहिए, ताकि वे हमें सही राह पर चला सकें।

दीपावली के दूसरे दिन यानी कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा के दिन गोवर्धन पूजा की जाती है, इसे अन्नकूट के नाम से भी जाना जाता है। गोवर्धन पूजा में गोधन यानी गायों की पूजा की जाती है, साथ ही गाय के गोबर से गोवर्धननाथ जी की प्रतिमूर्ति बनाकर उनका पूजन किया जाता है तथा उन्हें प्रसन्न करने के लिए अन्नकूट का भोग लगाया जाता है। यह दिन विशेष रूप से गोवंश व अन्न की समृद्धि के लिए है। एक पौराणिक कथा के अनुसार, एक बार जब इंद्र ने ब्रजवासियों को भारी वर्षा से भयभीत करने का प्रयास किया, तब भगवान श्रीकृष्ण ने गोवर्धन पर्वत को अपनी उँगली पर उठाकर सभी गोकुलवासियों को उनके कोप से बचा लिया, तब से इंद्र भगवान की जगह गोवर्धन पर्वत की पूजा करने का विधान शुरू हो गया और यह परंपरा वर्षों बाद आज भी जारी है।

इसके अगले दिन यानी कार्तिक शुक्ल द्वितीया के दिन भाई दूज मनाई जाती है। इस दिन बहनें अपने भाइयों के स्वास्थ्य व दीर्घायु के लिए पूजा-अर्चना करती हैं, भाइयों का तिलक करके उन्हें मिष्टान्न खिलाती हैं। इस तरह दीपावली के ये पाँच त्योहार स्वास्थ्य, समृद्धि, प्रकाश के अवतरण, गोवंश, अन्न समृद्धि व रिश्तों की प्रगाढ़ता का संदेश देते हैं। ☐

जीवन है अनमोल, खुशी से गुजारें

खुशी जीवन की अनमोल सौगात है, लेकिन हम इसे कितना सहेज पाते हैं, यह हम पर ही निर्भर करता है। खुशी धरती से रिसते हुए उस जल की तरह होती है, जो निरंतर जल के प्रवाह को बनाए रखती है, लेकिन यदि इस रिसाव को बंद कर दिया जाए तो खुशीरूपी जल का निकलना भी बंद हो जाता है। धरती में मौजूद जल की तरह ही खुशी भी हमारे अंदर ही छिपी होती है, लेकिन जीवन की व्यस्तता और उलझनों के कारण हम उसका एहसास नहीं कर पाते और अनजाने से ही उसके प्रवाह को, रिसाव को भी अवरुद्ध करते रहते हैं।

खुशी जीवन की स्वाभाविकता है, लेकिन जब हम अस्वाभाविक जीवन की ओर बढ़ते हैं तो हमारी खुशी हमसे छिन जाती है। वर्तमान समय में व्यक्ति अपने जीवन में कई तरह की कृत्रिमताओं को अपनाते हुए जी रहा है और इस कारण उसके जीवन में अनेक समस्याएँ पनप गई हैं। वह अपने व्यक्तित्व में भी कई तरह के मुखौटों का आवरण प्रतिदिन डालता है, इसके लिए झूठ, प्रपंच आदि का भी सहारा लेता है। अपनी समस्याओं को सुलझाने के लिए वह अन्य कई समस्याओं को भी आमंत्रण दे देता है, जिनसे उसके जीवन में तनाव, चिंता आदि का आगमन हो जाता है।

उदाहरण के लिए, सामान्य वातावरण में रहने के स्थान पर व्यक्ति अपने लिए वातानुकूलित वातावरण में रहने का चुनाव करता है, हरियाली बढ़ाने के स्थान पर उसे हटाकर कृत्रिम हरियाली लगाने का प्रयास करता है। आजकल मैदानों में हरी घास लगाने के स्थान पर लोग हरे-भरे मैट खरीदकर सजा लेते हैं। घर के चारों ओर की सुंदरता को निखारने के लिए गमले या पेड़-पौधे लगाने के बजाय प्लास्टिक के फूल, कृत्रिम गमले या सजावट का अन्य सामान सजा लेते हैं। शारीरिक सुंदरता बढ़ाने के लिए प्राकृतिक प्रसाधनों व तरीकों को अपनाने के स्थान पर रासायनिक सौंदर्य-प्रसाधनों का प्रयोग करते हैं।

इसी तरह अपने व्यक्तित्व को विकसित करने व निखारने के लिए उसकी वास्तविक विशेषताओं को स्वीकारने व उभारने के बजाय लोग उन्हें छिपाकर ऐसे व्यक्तित्व को उभारने का प्रयास करते हैं, जो आकर्षक हो और लोग उसे पसंद करते हों। जब हम ऐसा कार्य करते हैं, जो हमें पसंद नहीं होता, लेकिन अन्य लोगों को पसंद होता है तो ऐसा कार्य करने में हम थोड़ी देर के लिए तो खुश हो सकते हैं और लोगों के समक्ष खुश होने का अभिनय कर सकते हैं, लेकिन इससे हमें वास्तविक खुशी नहीं मिलती। वास्तविक व आंतरिक खुशी यदि हमें पानी है तो हमें अपने अंतर्मन की आवाज को सुनने का प्रयत्न करना होगा, तभी हम सच्ची खुशी के अधिकारी बन सकेंगे।

हमारे देखने का नजरिया भी हमारी खुशियों के स्तर को तय करता है। किसी घटना या बात को हम जिस तरह से समझते हैं या देखते हैं, हमारा शरीर उसी तरह की रासायनिक प्रतिक्रिया को जन्म देता है। उदाहरण के तौर पर, यदि किसी घटना में हम अपने लिए संभावनाएँ, खुशियाँ या उम्मीदें देखते हैं तो हमारा शरीर उन रसायनों या हॉर्मोन्स को स्रावित करता है जिन्हें प्रचलन की भाषा में हैप्पी हॉर्मोन्स कहकर पुकारा जाता है। इसी तरह अगर हम किसी घटना को निराशा या नाउम्मीदी के नजरिए से देखते हैं तो हमारे शरीर से स्ट्रेस हॉर्मोन्स स्रावित होते हैं।

इसलिए घटनाओं, परिस्थितियों या वस्तुओं को देखने का नजरिया बदलकर और अपनी आदतों को सुधारकर हम अपनी खुशियाँ आसानी से बढ़ा सकते हैं। इसके साथ यह भी देखा गया है कि अगर व्यक्ति दिन भर में आधा घंटा भी प्रकृति के साथ व्यतीत करता है तो इससे न सिर्फ उसका दिमाग शांत व प्रसन्न रहता है, बल्कि थोड़ी देर प्राकृतिक वातावरण में टहलने से उसके शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य में भी वृद्धि होती है। पसीना बहाने वाला शारीरिक श्रम भी हमारी आंतरिक संतुष्टि व प्रसन्नता को बढ़ाता है।

जब व्यक्ति इतना श्रम करता है कि उसके शरीर से पसीने की बूँदें निकलने लगती हैं, तो ऐसे समय में हमारा शरीर एक विशेष तरह की ऐंटीबॉडीज को स्रावित करता है। ये ऐंटीबॉडीज ऐसे प्रोटीन होते हैं, जो शरीर में रोगों से लड़ने की क्षमता को पैदा करते हैं। इसी के साथ हमारा शरीर ऐंडोर्फिन्स नामक रसायन को भी स्रावित करता है, जो हमारे मनोभावों को संतुलित रखने में सहायक सिद्ध होता है। स्पष्ट है कि हमारे देखने व सोचने के नजरिए का हमारे शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य पर यथोचित प्रभाव पड़ता है।

इसके अतिरिक्त भरपूर नींद भी हमारे जीवन को स्वाभाविक बनाती है और हमें सहज प्रसन्नता प्रदान करती है। पर्याप्त व गहरी नींद लेने से हमारे शरीर की आंतरिक गतिविधियाँ संतुलित होती हैं, हमारा मस्तिष्क ज्यादा अच्छी तरह से कार्य करता है और हम सही निर्णय ले पाते हैं। साथ ही संगीत व नृत्य का भी हमारी खुशी से गहरा संबंध है। यही कारण है कि संगीत की लहरें मन को सुकून देती हैं और शरीर की थिरकन मन को प्रफुल्लित करती है।

लोग प्राय: नृत्य व संगीत देखना व सुनना चाहते हैं और इनमें रुचि भी लेते हैं, इसलिए इन्हें भी अपने जीवन का हिस्सा बनाना चाहिए। थोड़ी देर के लिए गुनगुनाना भी हमें खुशियों का स्वाद दे सकता है। अच्छा संगीत हमें तनावमुक्त करता है, हमारी आंतरिक ऊर्जा को निखारता है और हमें सुकून देता है। संगीत के विशेष प्रभाव के कारण ही वैज्ञानिक अब संगीत चिकित्सा के माध्यम से कई बीमारियों का इलाज एक सशक्त विकल्प के रूप में देख रहे हैं।

संचार क्रांति की इस दुनिया में लोग एक तरह से लिखना ही भूलते जा रहे हैं, पहले पत्र लिखे जाते थे, लिखने वाले पेन या कलम से लोगों का गहरा रिश्ता होता था, लेकिन आजकल लोग एसएमएस, व्हाट्सअप आदि के माध्यम से ही अपने विचारों व भावनाओं की अभिव्यक्ति कर देते हैं और लिखने से दूर भागते हैं; जबकि लिखने का संबंध हमारी खुशियों से भी है।

दरअसल जब हम अपने विचारों की अभिव्यक्ति लिखने के माध्यम से कर देते हैं तो उसके पश्चात वे हमारे मस्तिष्क की सक्रिय स्मरण क्षमता का हिस्सा नहीं रह जाते हैं और इस कारण हमारा दिमाग हलका व खुश महसूस करता है। इसलिए अपने दिमाग में बार-बार उमड़ती-घुमड़ती बातों को कागज पर लिखना चाहिए, इसी तरह यदि दिमाग में अच्छे विचार आएँ तो उन्हें भी कहीं लिखकर सहेज लेना चाहिए; क्योंकि अच्छे विचार हमारे दिमाग में बुलबुलों की तरह उपजते हैं और फिर कहीं विलीन हो जाते हैं। यदि उन्हें सहेजना है तो उन्हें कहीं लिख लेना ही सबसे अच्छा तरीका होता है।

अच्छे विचारों, भावों के संपर्क में रहना भी हमारी खुशियों को बढ़ाता है और इसके लिए श्रेष्ठ साहित्य का चयन करके उसे पढ़ना, नियमित स्वाध्याय करना, पढ़ने की आदत बनाना आदि भी हमारे मानसिक स्वास्थ्य के लिए जरूरी हैं। पढ़ने से अच्छे विचार मिलते हैं और ये धीरे-धीरे हमारे व्यक्तित्व को सही दिशा प्रदान करते हैं, साथ ही समय-समय पर हमारा मार्गदर्शन भी करते हैं। इसके साथ-साथ सद्साहित्य में मौजूद भावनात्मक व आध्यात्मिक ऊर्जाएँ भी हमारा पथप्रदर्शन करती हैं और हमें आंतरिक खुशी प्रदान करती हैं; क्योंकि इन्हें पढ़ने से हमें एक आत्मिक संतोष प्राप्त होता है।

इस प्रकार खुश रहने के कई तरीके हैं, जिन्हें अपनाकर हम अपने जीवन में खुशियाँ हासिल कर सकते हैं और इन खुशियों में दूसरों को शामिल करके इनका दायरा भी विस्तृत कर सकते हैं। इसलिए अपने व्यक्तित्व में इन्हें आत्मसात् करने का प्रयत्न करना चाहिए। ❑

महर्षि वसिष्ठ, महाराज अज से मिलने जा रहे थे। मार्ग में एक व्यक्ति मिला। उसने अपना दुःख प्रकट करते हुए कहा—"ऋषिवर! मैंने सदैव सदाचरण किया है तो भी आज तक किसी ने न तो मेरी प्रशंसा की और न ही मुझसे प्यार किया।" महर्षि वसिष्ठ ने विचार किया और बोले—"आज से सदाचरण के साथ-साथ प्रिय वाणी बोलने का भी अभ्यास करो तो तुम्हें सर्वत्र सम्मान मिलेगा।" उनके निर्देश का पालन करके वह व्यक्ति कुछ ही दिनों में सर्वत्र लोकप्रिय हो गया।

अंतर्जगत की यात्रा का ज्ञान-विज्ञान —4

प्रतिक्रिया नहीं, प्रतिसंवेदन करते हैं जीवनमुक्त पुरुष

अंतर्यात्रा विज्ञान के प्रयोग मनुष्य में आंतरिक रूपांतरण को जन्म देते हैं। अंतश्चेतना में कुछ ऐसा घटित होता है, जिसे नूतन जन्म व नवजीवन की संज्ञा दी जा सकती है। आकृति तो वही पहले जैसी बनी रहती है, परंतु प्रकृति परिवर्तित हो जाती है। चिंतन, चेतना व चित्त बदल जाते हैं। जीवन के प्रति दृष्टिकोण, जीवन-दृष्टि नए हो जाते हैं। यह एक ऐसा एहसास है, जिसका अनुभव वही कर सकता है, जिसे यह मिला है। मिठास की अनुभूति मीठा खाने वाले को मिलती है। खटास वही अनुभव करता है, जो खट्टा खा रहा हो। शब्दों में इसकी चर्चा, इस पर किए गए तर्क-वितर्क कितने ही सम्मोहक हों, वे सब मिलकर भी इसकी अनुभूति नहीं प्रदान कर सकते। चित्त में जब विवेकज्ञान का प्रकाश प्रकाशित एवं प्रसारित होने लगता है, तो वह अनुभव बस, अनुभव से ही जाना जा सकता है। तर्क, विचार, शब्द सब मिलकर भी इसका अनुभव नहीं दे सकते।

इस योगकथा की पिछली कड़ी में इसी सत्य को उद्घाटित किया गया था। इसमें कहा गया था कि उस समय योगी का चित्त विवेकज्ञान में झुके हुए कैवल्य के अभिमुख हो जाता है। यह स्थिति जीवन के सामान्य क्रम के ठीक विपरीत है। सामान्य क्रम में तो चित्त वासनाओं से चित्रित होता है। जीवन नए-नए संस्कारों व कर्मबंधनों में फँसता-उलझता चला जाता है। यह क्रम अपने में नई-नई कड़ियों को जोड़ता है और फिर यह सिलसिला चलता जाता है, लेकिन जब चित्त में विवेकज्ञान का उदय होता है तो फिर यह क्रम उलट जाता है। कर्मबंधन की ओर अभिमुख यात्रा कैवल्य की ओर उन्मुख व अभिमुख हो जाती है। जीवन की अनुभूतियाँ परिवर्तित हो जाती हैं। परिवर्तित जीवन-दृष्टि नए ढंग से सब कुछ देखने लगती है। क्षण-प्रतिक्षण यह परिवर्तन होता जाता है। जीवन होते हुए भी जीवनमुक्त होने की अनुभूति होने लगती है।

इस अनुभूति को योगऋषि पतंजलि ने अपने अगले सूत्र में व्यक्त किया है—

तच्छिद्रेषु प्रत्ययान्तराणि संस्कारेभ्यः॥ 4/27॥

शब्दार्थ—तच्छिद्रेषु = उस (समाधि) के अंतराल में; **प्रत्ययान्तराणि** = दूसरे पदार्थों का ज्ञान; **संस्कारेभ्यः** = पूर्वसंस्कारों से होता है।

भावार्थ—ऐसा योगी पूर्वसंस्कारों के अनुसार संसार में व्यवहार करता है।

सामान्य जीवन व सामान्य जन के लिए इस सूत्र की अनुभूति में बड़ा अनोखापन है। बड़ी विचित्रता है। हम सबके मन में, इन पंक्तियों को पढ़ने वाले पाठकों के मन में यह सवाल उठ सकता है कि जीवनमुक्त पुरुष दैनंदिन जीवन में संपूर्ण रूप से कैसे भाग लेते हैं?

इस प्रश्न के उत्तर में इस सूत्र की व्याख्या समाविष्ट है। इस प्रश्न पर विचार करते हुए यह कहना है कि जब हम होशपूर्ण होते हैं, जब हम जागे हुए होते हैं, तो हम सहज स्फूर्त होते हैं। ऐसे में किसी योजना को मन में नहीं रखते; क्योंकि तब मन नहीं होता। जीवनमुक्त पुरुष क्षण-क्षण प्रतिसंवेदन करते हैं—जैसी स्थिति होती है, उनकी कोई योजना नहीं होती, कैसे करें—इसकी कोई धारणा नहीं होती। वे किसी बँधी-बँधाई विधि में नहीं चलते। वे तो बस, प्रतिसंवेदन करते हैं। उनका प्रतिसंवेदन किसी अनुगूँज की भाँति होता है।

जब हम पहाड़ पर जाते हैं और आवाज करते हैं तो पहाड़ियाँ उसे गुँजा देती हैं। ऐसा बस इसलिए होता है; क्योंकि वे पहाड़ियाँ प्रतिसंवेदित होती हैं। जब हम सितार बजाते हैं, तो सितार के पास 'क्या' और 'कैसे' प्रश्न नहीं होते। हाँ, हमारे मन में बजाते समय कोई विधि या कोई बात हो सकती है कि क्या बजाना है, क्या गाना है, लेकिन सितार? वह तो बस, प्रतिसंवेदित करता है, हमारी उँगलियों को। बस, जीवनमुक्त पुरुष ऐसे ही होते हैं एकदम शून्य, खाली। वे सदा ही समाधि में रहते हैं। सामान्य व्यवहार के लिए वे प्रतिसंवेदित होते हैं। प्रतिसंवेदन के बारे में यह बात समझ लेना जरूरी है कि प्रतिसंवेदन प्रतिक्रिया नहीं है। प्रतिक्रिया, क्रिया के उत्तर में की जाती है।

प्रतिक्रिया में मन का सोच-विचार, राग-द्वेष आदि सभी कुछ शामिल रहते हैं। सामान्य जीवनक्रम में हम सब ऐसी अनेक प्रतिक्रियाएँ करते रहते हैं, लेकिन प्रतिसंवेदन शून्यता से आता है। इनमें निर्विचार का प्रसाद होता है। इनमें कोई राग-द्वेष नहीं होता है। जीवनमुक्त पुरुष प्रतिसंवेदन करते हैं, प्रतिक्रिया नहीं। सामान्य क्रम में जब हम प्रतिक्रिया करते हैं, तो हमारे मन में विचार रहता है क्या, कैसे?

जब हम प्रतिक्रिया करते हैं तो वह किसी पूर्वनिर्धारित धारणा से निकली हुई होती है, लेकिन जब हम किसी जीवनमुक्त पुरुष के पास जाते हैं तो वे किसी पूर्वनिर्धारित धारणा के आधार पर उत्तर नहीं देते। सच तो यह है कि उनके पास उनकी कोई धारणा होती ही नहीं है। उनमें कोई पूर्वाग्रह नहीं होता, कोई धारणा नहीं होती। कोई वैचारिक सिद्धांत नहीं होते। वे शुद्ध रूप से प्रतिसंवेदित होते हैं। वे उस परिस्थिति के प्रति प्रतिसंवेदन करते हैं।

युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव का जीवन ऐसा ही था। उनका व्यवहार कई बार विचित्र व अनोखा होता था। कई बार यह सब कुछ समझ में नहीं आता था। दिन में दोपहर के समय उनके पास कुछ लोग मिलने के लिए आते थे। बड़ी सहजता से मिलते थे वे। उस समय हँसी-मजाक, क्रोध, करुणा सभी देखने को मिला करता था। उनके पास एक व्यक्ति आया तो बातचीत क्रम में वे उससे बोले—"देख बेटा! अब तेरी नौकरी लग गई है? शादी कर ले। शादी करके रहना। गृहस्थ जीवन में रहकर अपने दायित्वों का पालन करना और साधना भी करना।"

इसके थोड़े ही समय के बाद एक दूसरा व्यक्ति आया। उससे भी उन्होंने प्रेमपूर्ण बातचीत की। बाद में उससे कहा—"बेटा! तू शादी कभी मत करना। देश की सेवा करना। शादी में रखा ही क्या है। शादी से कभी किसी का भला हुआ, जो तेरा हो जाएगा।" थोड़े ही समय में दो विपरीत बातें, विरोधी विचार सुनकर बड़ा विचित्र-सा लगा। समझ नहीं आया कि गुरुदेव आखिर क्या कह रहे हैं। उनके चले जाने के बाद रहा नहीं गया तो पूछ लिया—"गुरुदेव! शादी करनी चाहिए या नहीं?" इस सवाल पर वे जोर से हँस दिए और बोले—"देख बेटा! जो व्यक्ति पहले आया था, उसके लिए शादी करना ठीक है। शादी करके वह अपने पूर्वकृत कर्मों से मुक्त होगा। गृहस्थ जीवन उसके लिए श्रेष्ठ है, लेकिन जो बाद में आया था, उसके लिए शादी न करना ही ठीक है। वह अभी थोड़े दिन पहले ही सेना में अफसर बना है। उसके कर्म लेख में अधिक आयु नहीं है। थोड़े ही समय बाद उसका जीवन समाप्त हो जाएगा। उसे वीरगति प्राप्त होगी। ऐसी स्थिति में विवाह उसके लिए उचित नहीं है।"

यही है प्रतिसंवेदन, जो सामने वाले के जीवन की गहनता में छिपे हुए भाग्य विधान को देखकर उनकी आंतरिक शून्यता से उभरे और व्यक्त हुए। प्रकट में इनमें भारी विरोधाभास है, लेकिन अप्रकट में केवल करुणा है। उनके उत्तर में न तो कोई धारणा काम करती थी और न कोई विचारणा। बस, अनंतशून्यता से सहजतापूर्वक करुणा का अवतरण होता था। जीवनमुक्त पुरुष इसी तरह से प्रतिसंवेदित होते हैं। उनका हर कर्म पूर्वसंस्कारों के अनुरूप होते हुए भी मौलिक होता है। उनमें सदा ही गहरे तल पर अंतस् सत्ता की एक अनवरत धारा बहती रहती है। जीवनमुक्त पुरुष सदा व्यक्ति में, स्थिति में झाँकते हैं। स्थिति ही निर्णय लेती है न कि उनका मन। सच तो यह है कि उनमें मन होता ही नहीं है। उनमें तो सदा शून्यता ही वास करती है। इसी शून्यता से अनवरत ईश्वरीय करुणा उनसे भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट होती रहती है। ☐

किसी समय बाघ और वन में अच्छी मित्रता थी। यदि कोई बाघ को मारने आता तो वन उसे छिपा लेता और यदि कोई वन में लकड़ी काटने आता तो बाघ उसे डराकर भगा देता। इस प्रकार दोनों एकदूसरे की रक्षा करते थे। एक बार किसी छोटी-सी बात के कारण दोनों के मध्य झगड़ा हो गया। बाघ वन छोड़कर चला गया। उसके जाने के बाद लोगों ने वन को काटना शुरू कर दिया और वन के अभाव में बाघ को भी छिपने का स्थान न मिला और वह भी मारा गया। प्रकृति और इनसान, ऐसे ही एकदूसरे के पूरक हैं। एकदूसरे का विरोध करके हम मात्र स्वयं को ही नष्ट कर रहे हैं।

धैर्यपूर्वक सहने का नाम है तितिक्षा

तप और तितिक्षा हर साधक के जीवन के अनिवार्य सद्गुण हैं। इनके बिना साधना सफल नहीं होती और जीवन भी सार्थक नहीं बन पाता। भगवान श्रीकृष्ण श्रीमद्भगवद्गीता के दूसरे अध्याय के चौदहवें श्लोक में कहते हैं—

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत॥

भगवान कहते हैं कि हे कुंतीपुत्र! सरदी, गरमी और सुख-दुःख को देने वाले इंद्रिय और विषयों के संयोग तो उत्पत्ति-विनाशशील और अनित्य हैं, इसलिए हे भारत! उनको तू सहन कर।

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय, में मात्रा शब्द तन्मात्रा का द्योतक है। इंद्रियों की शक्तियाँ तन्मात्राओं में रहती हैं, इंद्रियों से जब इन तन्मात्राओं का संयोग होता है तो हमें अनुभव प्राप्त होता है। **शीतोष्णसुखदुःखदाः**—यानी सरदी-गरमी और सुख-दुःख, ये अभी हैं और अभी नहीं रहेंगे, इसलिए ये विनाशशील और अनित्य हैं। इसीलिए श्रीभगवान कहते हैं कि हे अर्जुन! हे भारत! **तितिक्षस्व**—तू इन्हें सहन कर।

इस श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण ने तितिक्षा की बात की है। एक शब्द है—तप और दूसरा शब्द है—तितिक्षा। आदिशंकराचार्यकृत प्रसिद्ध वैराग्य ग्रंथ विवेकचूड़ामणि में साधन चतुष्टय (18-32) के नाम से उन्होंने प्रत्येक साधक के लिए साधना में सफलता हेतु चार साधनों की बात कही है। ये चार साधन विवेक, वैराग्य, षड्संपत्ति और मुमुक्षुता के नाम से पुकारे गए हैं। इन षड्संपत्तियों में शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा एवं समाधान आते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि छह तरीके की संपत्ति साधक में, साधना करने वाले व्यक्ति में होनी चाहिए। इन षड्संपत्तियों में तितिक्षा का विशेष महत्त्व है।

तितिक्षा का मतलब है—धैर्य और प्रसन्नता के साथ व्यक्ति के अंदर कष्ट-कठिनाइयों को सहन करने की योग्यता। तप और तितिक्षा देखने में एक समान प्रतीत होते हैं, लेकिन इनमें थोड़ा अंतर है। तप संकल्पपूर्वक किया जाता है और तितिक्षा धैर्यपूर्वक। तप की प्रक्रिया एक निश्चित अवधि के लिए होती है, जैसे कि हम 40 दिन का अनुष्ठान कर रहे हैं या हम एक वर्ष का पुरश्चरण कर रहे हैं और हमने अनुशासन तय किए कि हम एक समय भोजन करेंगे या इस तरह की जीवनशैली अपनाएँगे, जमीन में सोएँगे। ऐसा करके हम तप के अनुशासन नियत करते हैं और संकल्पपूर्वक हम उनको पूरा करते हैं और यह तप एक निश्चित अवधि के लिए होता है।

इस तरह तप हमारा संकल्प होता है, उसकी अवधि निश्चित करना हमारा अधिकार होता है, लेकिन तितिक्षा हमारा संकल्प नहीं होता है। अगर तितिक्षा संकल्पपूर्वक हो तो भी उसकी कोई अवधि नहीं होती है, लेकिन तप से ज्यादा हमें तितिक्षा में दृढ़ता की जरूरत पड़ती है। तप में तो हमें मालूम होता है कि नौ दिन का यह अनुष्ठान है, नौ दिन के बाद हम अपने स्वाभाविक जीवन में लौट सकते हैं, लेकिन तितिक्षा कब तक? मालूम नहीं कब तक सहन करना है? लेकिन इसमें प्रसन्नतापूर्वक अपनी मरजी से सहन करना होता है।

हमारे जीवन में सरदी-गरमी, सुख-दुःख, मान-अपमान कब आएँगे और कब जाएँगे, ये जीवन की आंतरिक व बाह्य परिस्थितियाँ निर्धारित करती हैं, इन पर हमारा वश नहीं होता। हमारी जिंदगी में मौसम के अनुसार सरदी-गरमी आती है, लेकिन सुख-दुःख, मान-अपमान ये काल व हमारे कर्म निर्धारित करते हैं। इसलिए जीवन में कभी सुख हो सकता है, कभी दुःख हो सकता है, कभी मान हो सकता है, कभी अपमान हो सकता है। हमें यह नहीं मालूम होता कि काल व हमारे कर्म हमारे लिए क्या लेकर आ रहे हैं।

प्रायः यह देखा जाता है कि हम अपनी परिस्थितियों से उत्तेजित होते हैं, विचलित होते हैं, घबराते हैं, क्रोधित होते हैं, बदला लेने की ठानते हैं, द्वेष कर बैठते हैं, वैमनस्य कर लेते हैं और शत्रुता का संकल्प ले लेते हैं,

कुल मिला करके हमारे जीवन में जो परिस्थितियाँ होती हैं, वे हमारे अंदर विकार पैदा करती हैं, वो हमारे विचार, हमारा धैर्य, हमारी शांति, हमारी प्रसन्नता छीन लेते हैं, लेकिन तितिक्षा के द्वारा हम अपने जीवन की परिस्थितियों के साथ धैर्यपूर्वक जीना सीख सकते हैं।

हमारा शरीर पंचमहाभूतों से मिलकर बना है और इनकी पंचतन्मात्राएँ हमारी इंद्रियों का प्रतिनिधित्व करती हैं। पंचमहाभूत हैं—क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर और इनकी तन्मात्राएँ हैं—रस, गंध, रूप, स्पर्श, शब्द। पृथ्वी की तन्मात्रा गंध है, जल की तन्मात्रा रस, अग्नि की तन्मात्रा रूप, वायु की तन्मात्रा स्पर्श और आकाश की तन्मात्रा शब्द है। ये हमारे इंद्रियों के गुण हैं और अनुभूतियाँ हमें इन्हीं रूपों में प्राप्त होती हैं यानी रस, रूप, गंध, स्पर्श, शब्द—इन्हीं रूपों में अनुभूतियाँ हमें मिलती हैं और हमारी इंद्रियाँ इन्हीं रूपों में अनुभूतियाँ ग्रहण करती हैं और यही हमारे शारीरिक व मानसिक सुख-दुःख का कारण भी होते हैं।

जीवन में मिलने वाली अनुभूतियाँ, पीड़ा-प्रताड़ना, कष्ट-कठिनाइयाँ कभी-कभी हमारी सहनशक्ति के पार हो जाती हैं या असहनीय हो जाती हैं। उदाहरण के लिए जब मनुष्य के व्यवहार में विचलन आता है, मन घबराता है, मन परेशान होता है तो उसे चिंता सताती है, उसकी रात की नींद उड़ जाती है, क्यों? क्योंकि वो सहन नहीं कर पाता है, उसके लिए यह सब कुछ असहनीय होता है। किसी ने हमारे साथ बुरा व्यवहार किया, हमारी भावनाओं के साथ बड़ा आघात किया तो हम सोचते हैं कि उसने ऐसा क्यों किया? और उसके व्यवहार की पीड़ा हमें टीसती रहती है, चुभन हमें सालती रहती है। वो शब्द हमें लगातार चुभते रहते हैं और हमें फिर बहुत पीड़ा होती है, कई बार इससे भावनात्मक पीड़ा होती है और कई बार इसके कारण हमें तनाव होता है और हमारे विचार विशृंखलित हो जाते हैं।

प्रत्येक मनोरोग की शुरुआत तनाव से होती है, आप देखिए शीत और उष्ण, सुख और दुःख हमारे जीवन की अनुकूलता छीन लेते हैं, हम नहीं सहन कर पाते हैं और हम विचलित हो जाते हैं। विभिन्न कारणों से मिलने वाली विकलता अंततः हमें मनोरोगी तक बना सकती है। यदि किसी व्यक्ति के जीवन में लगातार बुरा होता रहे या उसको कभी सफलता न मिली हो, तो उसका आत्मविश्वास छिन जाता है। ऐसी स्थिति में कोई भी शुभ चीज उसके जीवन में प्रवेश करती है तो वह उसे महसूस ही नहीं कर पाता, क्योंकि उसे शंकाएँ घेर लेती हैं, वह घबराता है।

आज जीवन में तितिक्षा का गुण व्यक्ति खोता जा रहा है, इसलिए यदि परिवार में पत्नी पति को कुछ कह दे, पति पत्नी को कुछ कह दे, माँ-बाप बच्चे को कुछ कह दें तो थोड़ी ही देर में आत्महत्या करने तक की बातें हो जाती हैं। अक्सर अखबारों में निकलता है कि स्कूल में रिजल्ट निकलने के साथ कितने बच्चों ने आत्महत्या कर लीं। क्यों? क्योंकि लोग मानसिक घात-प्रतिघात सहन नहीं कर पाते। इसलिए मानसिक तितिक्षा सामान्य जीवन की भी आवश्यकता है। जीवन में तप न भी हो, केवल तितिक्षा हो तो यह मनोरोगों को भगाने का अचूक उपाय है।

जो सहन करना जानता है, वो कभी मनोरोगी नहीं होता है, उसको तनाव नहीं होता, उसको विषाद नहीं होता, उसको उन्माद नहीं होता, उसको अपस्मार, उसको हिस्टीरिया नहीं होता है; क्योंकि वो सहन कर लेता है। हिस्टीरिया क्यों होता है? क्योंकि इसमें भावनात्मक पीड़ा जम जाती है जैसे कि कहीं हमें घाव लग जाता है, तो खून जम जाता है, थक्के जम जाते हैं, ऐसे ही हमारी अंतश्चेतना में पीड़ा जम जाती है, विषाद जमा रह जाता है, रह-रह करके वो उभरता है कि ऐसा क्यों हुआ? इसमें हम बहुत दिनों तक अपना चैन खोए रहते हैं और वहीं अटके रहते हैं।

कई बार आप देखें कि घटनाएँ तो चली जाती हैं, लेकिन उनके एहसास और खासतौर पर पीड़ादायक एहसास बने रहते हैं और हम वहीं अटके रहते हैं। बुरे दिन सबके जीवन में आते हैं और सही पूछो तो बुरे दिन किसी-न-किसी रूप में हमारे जीवन में बने ही रहते हैं। अच्छे दिन आते भी हैं तो हम उन्हें महसूस ही नहीं कर पाते; क्योंकि वो खुशबू की तरह दो मिनट में उड़ जाते हैं, चले जाते हैं और फिर हम वहीं-के-वहीं टिक जाते हैं। बुरे दिन हमारा आत्मविश्वास छीन लेते हैं; क्योंकि हमारा धैर्य, हमारा साहस सब चुक जाता है, सब छिन जाता है, लेकिन जो तितिक्षा को अपने जीवन-दृष्टिकोण का अंग बनाते हैं, वे हर तरह की परिस्थितियों से उबरते हुए अपने गंतव्य तक एक-न-एक दिन पहुँच ही जाते हैं। तितिक्षा का महत्त्व तप से भी अधिक है, इसलिए भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं—**तितिक्षस्व भारत**। ❑

एकादशी व्रत की महिमा

एक बार ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य काशी पधारे। उस दिन एकादशी थी। पूज्य महाराज जी अपने नियमानुसार एकादशी के दिन स्वयं निराहार व्रत रहकर, अन्य लोगों को भी एकादशी व्रत करने की प्रेरणा दे रहे थे। वे कह रहे थे—''जहाँ एकादशी के दिन उपवास करना चाहिए, वहीं एकादशी के दिन अन्न के साथ-साथ चाय, पान, मादक पदार्थों आदि का भी परित्याग कर देना चाहिए; क्योंकि इन सभी मादक पदार्थों के सेवन से तामसी वृत्ति बनती है तथा शुभ कर्म, पुण्य आदि क्षीण होते हैं और व्रत निष्फल हो जाते हैं। अतः दुर्व्यसनों से सदैव दूर ही रहना चाहिए।

''वे आगे बोले—एकादशी व्रत करने से करोड़ों लोगों के लिए एक दिन का अन्न बच जाता है, इस प्रकार उपवास करने से परोपकार का कार्य भी स्वतः ही हो जाता है। उपवास से पेट की बीमारियाँ भी स्वतः ही दूर हो जाती हैं। एकादशी का व्रत करना, भगवान का भजन, सुमिरन, नाम-जप, यज्ञ-हवन, गंगास्नान, कथा-श्रवण, नित्यप्रति सूर्य को अर्घ्य देना, गायत्री मंत्र का जाप, सादगीपूर्ण व सदाचारी जीवन जीना तथा गोसेवा करना आदि आत्मकल्याण के साधन हैं। हमारे शास्त्रों में एकादशी व्रत का बड़ा महत्त्व बताया गया है। एकादशी व्रत से यमदूतों की मार, प्रताड़ना का भय नहीं रहता और यह परलोक में भी काम आता है।

''ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य जी ने आगे कहा कि एक बार हम सनातन धर्म का प्रचार करते हुए राजस्थान गए हुए थे। वहाँ हम एक बगीचे में ठहरे थे और उस दिन दैवयोग से एकादशी का पावन दिन था। वहाँ अनेक श्रद्धालु भक्त आए हुए थे। उनमें दो मुसलमान सज्जन भी हमसे मिलने आए। उन्होंने दूर से ही हमारा अभिवादन किया और एक ओर बैठ गए। जब हमारे एक ब्रह्मचारी ने हमारे पास भेंट में आए फलों को प्रसाद के रूप में सभी को बाँटना प्रारंभ किया तो हमने उस ब्रह्मचारी से कहा कि भाई! कुछ प्रसाद सामने बैठे हुए उन मुसलमान भाइयों को भी दे दो।

''जब वह ब्रह्मचारी उन दो मुसलमानों को प्रसाद देने लगा तब बड़ी श्रद्धाभक्ति से हाथ जोड़कर उन दोनों ने कहा—'महाराज जी! आज तो एकादशी का दिन है। हम दोनों ही एकादशी के दिन निर्जल व्रत करते हैं। इसलिए आज हम कुछ भी ग्रहण नहीं करेंगे।' उनके मुख से ऐसा सुनकर वहाँ बैठे सभी लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ, साथ ही सबके मन में यह जिज्ञासा भी हुई कि भला ये मुसलिम भाई एकादशी व्रत क्यों और कैसे करते हैं?

''जिज्ञासावश हमने उन दोनों को अपने पास बुलाया और पूछा—'आप दोनों तो मुसलमान हैं, पर एकादशी व्रत कब से और कैसे करने लगे हैं? पूरी बात बताएँ।' तब उन दोनों ने अपने जीवन की एक आश्चर्यजनक एवं सत्य घटना सुनाते हुए बताया कि कैसे संयोगवश एकादशी के दिन निराहार रह जाने से किस प्रकार परलोक में यम की यातना से उनकी रक्षा हुई। उन्होंने बताया—'हम दोनों मुसलमान हैं और गाड़ी चलाकर सामान ढोकर अपना गुजारा करते हैं। एक दिन हम भाड़े पर अपनी गाड़ी ले गए थे। गाड़ी चलाने के कार्य में हम उस दिन इतने व्यस्त रहे कि हमें उस दिन अन्न और जल लेने का समय तक नहीं मिला।'

''वे आगे बोले—'इस प्रकार उस दिन हम दोनों ही पूरी तरह भूखे-प्यासे रह गए और एक बाग में जाकर ठहर गए। हमें नींद आ गई। उस दिन उस बाग में तीन अन्य व्यक्ति भी ठहरे हुए थे। वे भोजन बनाकर खा रहे थे। वहाँ रात में हृदयाघात से हमारी मृत्यु हो गई। उसी समय हमने देखा कि हमारे पास भयंकर आकृति वाले कुछ लोग आए और उन्होंने हम पाँचों आदमियों को पकड़ लिया। वे हमें किसी विचित्र स्थान पर ले गए। वहाँ हमने देखा कि सूर्य के समान एक अत्यंत तेजस्वी राजपुरुष जैसा कोई व्यक्ति एक सुंदर सिंहासन पर विराजमान था। उसने हमको पकड़कर ले जाने वाले अपने दूतों से पूछा कि तुम इन दोनों को पकड़कर यहाँ क्यों लाए हो? ये दोनों तो आज एकादशी का निर्जल व्रत

किए हुए हैं। इन्हें तुरंत यहाँ से ले जाओ। एकादशी व्रत के पुण्य से इनकी आयु के कुछ दिन और बढ़ गए हैं। उनके ऐसा कहने पर वे दूत हम दोनों को अपने साथ लाकर वापस उसी बगीचे में छोड़ गए।’

“अपनी कथा आगे बढ़ाते हुए वे दोनों बोले—‘जब हमें होश आया और हम दोनों परलोक में घटित घटना पर आपस में विचार करने लगे तो हमें बड़ा आश्चर्य हुआ। अनुभव में आई हुई इस घटना में निर्जला एकादशी व्रत किए जाने की बात हमें विशेष रूप से याद रही। इस व्रत के विषय में हमने हिंदू भाइयों से कभी सुना अवश्य था, पर इसकी ऐसी महत्ता पर कभी ध्यान नहीं दिया था। हमें बड़ा आश्चर्य हुआ कि हम दोनों ही मुसलमान हैं और न हम एकादशी व्रत के बारे में जानते हैं और ना ही कभी एकादशी व्रत किया है, फिर वहाँ यमलोक में हमें एकादशी व्रत करने वाला क्यों बताया गया?’ पूरी जानकारी करने के लिए हम तुरंत अपने गाँव के ही हिंदू पंडित जी से मिले और उनसे पूछा—‘कल हिंदू लोगों की कौन-सी तिथि और व्रत था?’ पंडित जी ने कहा—‘कल भीमसेनी एकादशी थी।’ यह सुनते ही हमारे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। हमने पूरी बात पंडित जी को बतलाई, फिर पंडित जी ने कहा—‘ऐसा होना बिलकुल संभव है; क्योंकि शास्त्रों में भी एकादशी व्रत की ऐसी विलक्षण महिमा के विषय में लिखा है।’

“हम दोनों ने तब सोचा कि जब बिना संकल्प के एकादशी के दिन निर्जला रह जाने से हमें ऐसा फल प्राप्त हो गया, एकादशी व्रत न करने पर भी उसे एकादशी व्रत मान लिया गया और उसके कारण हम यमयातना से भी बच गए, तब यदि हम वास्तव में श्रद्धापूर्वक एकादशी व्रत करें तो फिर उसके महान पुण्यों का भला क्या कहना? ऐसा विचार करके हम दोनों व्यक्ति उसी समय से प्रत्येक एकादशी के दिन उपवास किया करते हैं। हम मुसलमान होकर भी एकादशी व्रत करते हैं तथा उसी दिन से मांस, मदिरा, नशा आदि सबका परित्याग हमने कर दिया। अब हमें यह विश्वास हो गया है कि सात्त्विक, सदाचारी व पवित्र जीवन जीना ही कल्याणकारी है।’

“उन मुसलमान भाइयों के मुख से एकादशी व्रत एवं परलोक से वापसी की घटना सुनकर सभी हतप्रभ रह गए। फिर शंकराचार्य जी ने कहा—‘यह हमारे शास्त्रों, पुराणों की अद्‌भुत महत्ता सिद्ध करने वाली सत्य एवं चमत्कारी घटना है।’ हमारे सनातन धर्म की महिमा के समक्ष समय-समय पर अन्य धर्मावलंबी भी नतमस्तक होते रहे हैं।” ❑

किसी व्यक्ति ने शेख फरीद से पूछा—“महापुरुष असंख्य कष्ट मिलने पर भी मुस्कराते कैसे रहते हैं?” फरीद मुस्कराए और उस व्यक्ति को एक गीला नारियल तोड़ने को दिया। व्यक्ति ने उसे तोड़ा तो उसका खोपरा साबुत न होकर टुकड़ों में था और नारियल का छिलका उससे चिपका हुआ था। फिर शेख फरीद ने उस व्यक्ति को एक सूखा नारियल तोड़ने को दिया। जब उस व्यक्ति ने उस नारियल को फोड़ा तो उसमें से नारियल की गिरी वाला गोला साबुत निकला और नारियल का खोल भी पूर्णतया अलग हो गया। फरीद ने प्रश्नकर्त्ता से कहा—“यही तुम्हारे सवाल का जवाब है। महापुरुष सूखे नारियल की तरह होते हैं और सामान्य व्यक्ति गीले नारियल की तरह। सामान्य व्यक्ति अपने शरीर, परिवार, संपत्ति आदि से चिपके हुए होते हैं। इसलिए कष्ट आने पर बहुत दुःखी होते हैं, परंतु महापुरुष सूखे नारियल की तरह मोह-माया से परे होते हैं। कष्ट आने पर वे उससे स्वयं को ऐसे ही पृथक महसूस करते हैं, जैसे खोल से सूखा नारियल अलग होता है। उनका जुड़ाव केवल बाहरी होता है, भीतरी नहीं।”

जीवन की सार्थकता का बोध

इस मानव जीवन का लक्ष्य क्या है, इसमें करना क्या है—यह यक्षप्रश्न अधिकांश व्यक्तियों के लिए जीवन भर एक पहेली-सा बना रहता है। चारों ओर यों ही काल-कवलित होते जीवन को देखकर बस, एक आह-सी निकलती है और अपने ऐसे ही दुःखद अंत की सिहरन भरी कल्पना कौंध जाती है, लेकिन यह सब क्षणिक ही होता है। फिर सब कुछ सामान्य-सा हो जाता है और जीवन की गाड़ी ढर्रे पर लुढ़कती जाती है।

रोज पेट के निर्वाह, परिवार के पालन-पोषण के लिए खेती-बारी, नौकरी-धंधे, दुकान-व्यापार की भाग-दौड़ लगी रहती है। इसमें कुछ गलत भी तो नहीं, आखिर यह शरीर व परिवारजनों के प्रति कर्त्तव्यपालन का अनिवार्य हिस्सा जो है, लेकिन जीवन-निर्वाह भर में ही अपनी सारी ऊर्जा, समय व जिंदगी को झोंक देना कहाँ की समझदारी है, जिसके अंत में एक निरर्थकता का ही आभास मिले और जीवन का अवसान एक आह के साथ हो।

क्या मानव जीवन का, यों ही बिना किसी निष्कर्ष के बीत जाना इसकी नियति है? क्या बिना किसी सुकून-संतोष के इस जीवन का नष्ट हो जाना एक अटल सत्य है? क्या बाहरी उपलब्धियों के बावजूद आंतरिक शून्यता, असंतोष, कसक के साथ एक अभिशप्त जीवन जीना ही इनसानी वजूद का अकाट्य विधान है? ये प्रश्न, हर इनसान से किसी-न-किसी समय जवाब माँगते हैं; जिनका जवाब दिए बिना वह सार्थकता का बोध नहीं पा सकता। बाह्य जीवन में सब कुछ ठीक दिखते हुए भी ऐसे में व्यक्ति आंतरिक रूप से घोर असंतोष और बेचैनी के दौर से गुजर रहा होता है।

इसका एक ही कारण है—जीवनबोध का अभाव, आत्मबोध का अभाव और इसके चलते जीवनलक्ष्य का सही, स्पष्ट निर्धारण न हो पाना। रोजी-रोटी, घर-परिवार, समाज-संसार के आगे भी जीवन के कुछ मायने हैं। व्यक्ति का अस्तित्व मात्र शरीर-मन तक ही सीमित नहीं है। ऋषि-मुनियों ने तो काम, भूख, नींद, भय के दायरे में सिमटे जीवन को पशुतुल्य माना है, जिसे मानवीय गरिमा के अनुकूल तो नहीं ही कहा जा सकता।

इससे एक कदम आगे, यदि जीवन की इच्छाएँ, कामनाएँ और वासनाएँ बढ़ी-चढ़ी हैं तो किसी भी कीमत पर असीमित सुख, सुविधाएँ और उपलब्धियों की ललक, ऐसे-ऐसे कारनामे करवाती है कि व्यक्ति पशु से भी नीचे गिर जाता है। ऐसे में व्यक्ति साक्षात् असुर, पिशाच बन जाता है और भ्रष्टाचार, दुराचार, व्यभिचार, हिंसा, अपराध, आतंक के पाप-पंक में धँसता जाता है। जब तक होश आता है, तब तक काफी देर हो चुकी होती है। ऐसा कलंकित जीवन घोर विक्षिप्तता की अवस्था में जीने के लिए अभिशप्त होता है और परिवार, समाज एवं परिवेश के लिए भी संकट का कारण बनता है। ऐसे जीवन का त्रासदीपूर्ण अंत तय है।

इसके अतिरिक्त उपरोक्त जीवन के इतर, एक जीवन ऐसा भी होता है, जो न तो पशुतुल्य ढर्रे का होता है और न ही असुर जैसा विप्लवी। यह अपनी प्रतिभा और बुद्धि-चातुर्य के बल पर तमाम तरह की उपलब्धियों से भरा होता है। समाज के भय से चालित यह जीवन नैतिकता की डोर में बँधा एक प्रतिष्ठित स्तर पाता है, लेकिन जीवन की उच्चतर दिशा एवं स्पष्ट लक्ष्यबोध के अभाव में मोह आसक्ति, राग-द्वेष के नागपाश में जकड़ा रहता है। तथाकथित सामाजिक हैसियत, रौब-दाब, समृद्धि व उपलब्धि के बावजूद आंतरिक जीवन एक शून्यता, एक रिक्तता से भरा रहता है, जो सतत कचोटता रहता है। ऐसा जीवन भी अस्तित्व के महत्तर सत्य के अभाव में एक अनसुलझी गुत्थी ही बना रहता है।

यदि जीवनबोध होता और इसके प्रकाश में जीवनलक्ष्य का निर्धारण होता तो इस मानव जीवन की कुछ और ही पटकथा तैयार होती, जिसमें जीवन की उपलब्धियों के साथ सार्थकता का बोध होता, सुख के साथ गहन संतोष से जीवनयापन होता और हर पल पूर्णता की ओर बढ़ते रहने का आनंदपूरित एहसास भी होता।

जीवन का यह सुखद अंत हर व्यक्ति का जन्मसिद्ध अधिकार है; क्योंकि उसकी मूल प्रकृति ही दैवीय है। इसी कारण कहीं उसे अमृतपुत्र की संज्ञा दी गई है तो कहीं उसे ईश्वर का अविनाशी अंश कहा गया है। महर्षि वेदव्यास इसी आधार पर कहते हैं कि सृष्टि में मनुष्य जीवन से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं। यही तत्त्व विविध धर्मों में ईश्वरीय नूर, डिवाइन लाइट, सन ऑफ गॉड आदि रूपकों के नाम से वर्णित है।

संक्षेप में मानव जीवन में वे सारी संभावनाएँ बीज रूप में विद्यमान हैं, जो स्वयं इसके रचयिता—स्रष्टा में हैं। इन्हें साकार करते हुए वह मानव से महामानव, देवमानव, ऋषि, महर्षि, ब्रह्मर्षि बन सकता है। पैगंबर, देवदूत, अवतार आदि भी इसके विकास की सहज परिणति हैं। मानव चेतना के मर्मज्ञ ऋषिगण **अहम् ब्रह्मास्मि, अयमात्माब्रह्म, तत्त्वमसि, शिवोऽहम्, सच्चिदानन्दोऽहम्**—जैसे महावाक्यों के माध्यम से इसी महासत्य का उद्घोष करते हैं।

जिस पथ से व्यक्ति का दैवीय स्वरूप प्रकट हो और जीवन की परम एवं चरम संभावनाएँ अभिव्यक्त हों, वही जीवनलक्ष्य है। यही आत्मजागरण एवं आत्मविकास का पथ है। इसी पथ पर बढ़ते हुए व्यक्ति क्रमशः अंतः एवं बाह्य प्रकृति पर अधिकार पाता है और अपने शाश्वत स्वरूप को पाता है। पूर्णता की इस दशा को शास्त्रकारों ने आत्मसाक्षात्कार, जीवनमुक्ति, कैवल्य, समाधि, ईश्वरप्राप्ति, स्थितप्रज्ञता, मोक्ष आदि नाम दिए हैं।

इस लक्ष्य की ओर बढ़ता जीवन ही सार्थकता का बोध पाता है। वस्तुतः यही जीवनलक्ष्य गीताकार का स्वधर्म है, जो अपने स्वभाव के अनुरूप हर व्यक्ति के लिए भिन्न-भिन्न होना तय है। इसके निर्धारण के लिए आवश्यक है कि हम अपने अंदर झाँकें और देखें कि हमारे अंदर कौन-सी क्षमताएँ-विशेषताएँ विद्यमान हैं, जो हमें दूसरों से अलग पहचान देती हैं। ऐसा कौन-सा भाव, संकल्प, विचार बीज अंदर मौजूद है, जो अभिव्यक्त होने के लिए कुलबुला रहा है। इनके आधार पर हम अपना निजी, नितांत मौलिक लक्ष्य निर्धारित कर सकते हैं।

अंतःप्रेरित लक्ष्य का स्वरूप ही कुछ ऐसा होता है कि इसको साकार करने के लिए व्यक्ति कोई भी कीमत चुकाने को तैयार होता है। इसके लिए वह कुछ भी कर सकता है, कितना भी तप-त्याग एवं श्रम झोंक सकता है। हाँ! इसमें इतना सुनिश्चित हो कि यह सृजनात्मक स्वरूप लिए हो, विध्वंस से इसका दूर का भी रिश्ता न हो, जिससे कि आत्मकल्याण के साथ मानवकल्याण का व्यापक हित भी सध सके। क्षुद्र, अहं एवं संकीर्ण स्वार्थ से कलंकित लक्ष्य किसी भी तरह जीवन के दैवीय स्वरूप को प्रकट नहीं कर सकता।

लक्ष्य निर्धारण में हो सकता है कुछ समय लगे; क्योंकि जीवनलक्ष्य का निर्धारण एक दिन का काम नहीं है। शनैः-शनैः यदि नित्य आत्मविश्लेषण एवं चिंतन-मनन का क्रम जारी रखें, अपनी विशेषताओं, कमियों, रुचियों, आवश्यकताओं आदि का निरीक्षण करते रहें, तो इनका स्वरूप स्पष्ट होता जाता है। इसमें प्रज्ञावानों का, गुरुजनों का सहयोग ले सकते हैं। इसके स्पष्ट होते ही जीवन की दिशाधारा पलटनी तय है।

जीवन का लक्ष्य स्पष्ट होते ही दिशाहीन नाव, एक मंजिल की ओर बढ़ चलती है। व्यक्ति को जीने का मकसद मिल जाता है। तन, मन, हृदय और अंतरात्मा की सारी शक्तियाँ एक बिंदु पर केंद्रित हो जाती हैं और व्यक्ति जीवनलक्ष्य के संधान को बढ़ चलता है। ❑

दुष्टता की दुष्ट प्रवृत्तियाँ कई बार इतनी भयावह होती हैं कि उनका उन्मूलन करने के लिए संघर्ष के बिना काम ही नहीं चल सकता। रूढ़िवादी, प्रतिक्रियावादी, दुराग्रही, मूढ़मति, अहंकारी, उद्दंड, निहित स्वार्थी और असामाजिक तत्त्व विचारशीलता और न्याय की बात सुनने को तैयार नहीं होते। वे सुधार और सदुद्देश्य को अपनाना तो दूर, उलटे प्रगति के पथ पर पग-पग पर रोड़े अटकाते हैं। ऐसी पशुता और पैशाचिकता से निपटने के लिए प्रतिरोध और संघर्ष अनिवार्य रूप से आवश्यक है।

—परमपूज्य गुरुदेव

गलतियाँ न करें, सजग जीवन जिएँ

जिंदगी में अक्सर जाने-अनजाने या स्वभाववश गलतियाँ हो जाती हैं और फिर उनका परिणाम भी हमें भुगतना पड़ता है। हमसे हो जाने वाली गलतियों का एहसास होने पर सबसे अधिक दु:खी मन होता है और उन्हें सुधारने की कोशिश में लग जाता है, लेकिन कभी-कभी गलतियों को सुधारना इतना आसान नहीं होता और इसलिए इन गलतियों के लिए मन में पछतावा बना रहता है।

प्रश्न उठता है कि ये गलतियाँ हमसे कैसे और कहाँ से हो जाती हैं? मन या मस्तिष्क की क्रियाविधि से या फिर कुछ बोलने से। अक्सर कुछ गलत कहने या करने के तुरंत बाद यह एहसास होने लगता है कि अब क्या होगा? इसे कैसे ठीक करें? क्योंकि हम जो कुछ भी कहते या करते हैं, उसकी न्यूनाधिक प्रतिक्रिया होती ही है।

एक शोध अध्ययन के अनुसार—बातचीत के दौरान; खासकर अपने साथ काम करने वाले लोगों के साथ नकारात्मक भावनाओं का इस्तेमाल सबसे अधिक घातक होता है। सामान्यतया किसी भी व्यक्ति को गलत या सही के मापदंडों पर नहीं तौला जा सकता; क्योंकि कभी-कभी होता यह है कि व्यक्ति कहना कुछ चाहता है और जो कहता है, उसका मतलब कुछ और हो जाता है। यदि व्यक्ति द्वारा कही गई बातों का गलत मतलब निकलता है तो इसका प्रभाव नकारात्मक पड़ता है।

प्राय: जिंदगी में छोटी-बड़ी गलतियाँ हर किसी से हो जाती हैं। एक अध्ययन के अनुसार, 58 फीसदी लोगों का यह मानना है कि वे दिन में एक से अधिक बार जाने-अनजाने कुछ गलत कह या कर देते हैं। 22 प्रतिशत लोग गलतियाँ करने के तुरंत बाद पछताने लगते हैं और किसी तरह से बात बनाने की कोशिश करते हैं। केवल 11 प्रतिशत लोगों को बाद में जाकर यह एहसास होता है कि उन्होंने कुछ गलत कर दिया। इसके अतिरिक्त बहुत कम प्रतिशत में ऐसे भी लोग होते हैं, जिन्हें अपने किए पर बिलकुल भी अफसोस नहीं होता है।

आयरिश उपन्यासकार जेम्स जॉयस के अनुसार, गलतियाँ नए आविष्कारों के लिए राहें बनाती हैं। अभी हाल ही की एक घटना है, जिसमें अमेजन वेबसाइट में काम करने वाले एक वरिष्ठ कर्मचारी की वजह से चौबीस घंटे से अधिक नेटवर्क बाधित रहा। उस शख्स ने गलती से नेटवर्क का रूट बदल दिया था। अपनी गलती का एहसास होते ही उसने तुरंत मेल करके अपने अधिकारियों को इस बारे में बताया और सुधार में लग गया। इसके साथ ही उसने अपनी गलती के कारण नौकरी छोड़ने की पेशकश भी की, लेकिन कंपनी के समझदार प्रबंधकों ने उसकी त्वरित कार्रवाई की प्रशंसा की और लीडरशिप मीटिंग में भी उस व्यक्ति का जिक्र करते हुए कहा कि गलतियाँ आपको बहुत कुछ सिखाती हैं, हालाँकि गलती करने के बाद आपकी प्रतिक्रिया कैसी होती है, इससे भी बहुत कुछ तय होता है।

मनोवैज्ञानिक सलाहकार डॉ. रॉबर्ट वुड्स के अनुसार, अगर व्यक्ति अपने कार्य के प्रति ईमानदार है, तो वह जान-बूझकर गलतियाँ नहीं करेगा, लेकिन यदि कोई व्यक्ति सोची-समझी गई साजिश के तहत गलतियाँ कर रहा है तो इसके नतीजे भुगतने के लिए उसे तैयार रहना होगा; क्योंकि इसका परिणाम कुछ भी हो सकता है। अनजाने में हुई गलतियाँ चाहे कार्य से संबंधित हों या बातचीत से, उन्हें समय रहते सँभाला जा सकता है।

यदि अनजाने में अपने द्वारा की हुई गलती का एहसास व्यक्ति को होता है तो वह उसके लिए दु:खी होता है और मन से क्षमाप्रार्थी भी होता है। ऐसी परिस्थिति में यह जरूरी है कि वह अपनी गलती को मान ले और विनम्रतापूर्वक अपनी गलती के लिए संबंधित व्यक्ति से क्षमा माँग ले। इससे मन अपराधबोध से मुक्त हो जाता है, लेकिन गलती क्यों हुई, इसके कारणों को जानना और जरूरत पड़े तो बताना भी जरूरी होता है।

गलती करना भी व्यक्ति के लिए महत्त्वपूर्ण हो सकता है, यदि वह अपनी की हुई गलतियों से सबक सीखे और उन्हें ना दोहराने का संकल्प ले। जीवन में

जितनी भी तरह की असफलताएँ मिलती हैं, वे सब हमारी गलतियों का ही परिणाम होती हैं। एक गलत कदम हमें अपनी सफलता की मंजिल से कोसों दूर कर सकता है और वहीं एक सफल कदम हमें अपनी मंजिल की ओर ले जा सकता है। सफल वही होता है, जिसने अपनी गलतियों को दोहराना बंद कर दिया है और अपने कार्य को बिना किसी त्रुटि के किया है। सफलता भी व्यक्ति को तभी मिलती है, जब व्यक्ति अपने कार्य में इतना प्रवीण हो जाता है कि गलतियाँ फिर उससे होती ही नहीं।

कोई भी व्यक्ति जब किसी कार्य को प्रारंभ में सीखने का प्रयास करता है, तो अनगिनत गलतियों को वह करता है और अनजाने में ही उन्हें दोहराता भी है, लेकिन धीरे-धीरे जब वह कार्य को सीखने लगता है तो उसके द्वारा की हुई गलतियों में कमी आने लगती है और अपने कार्य में कुशल होने पर वह गलतियाँ नहीं करता और अगर किसी तरह गलती हो भी जाती है, तो वह उसे तुरंत पहचान लेता है।

देखा जाए तो जो व्यक्ति जितना सजग, होशपूर्ण होता है, वह उतनी ही कम गलतियाँ करता है और जो व्यक्ति जितना अधिक बेहोशी में जीता है, जाग्रत नहीं रहता है, वह उतनी ही अधिक गलतियाँ करता है। जब कोई व्यक्ति नशा करता है तो उसे अपने द्वारा की हुई किसी भी तरह की गलती का एहसास नहीं होता, और उस दौरान वह सबसे अधिक गलतियाँ करता है, लेकिन जब उसी व्यक्ति का नशा दूर होता है तो उसे अपने किए पर सबसे अधिक पछतावा होता है।

सामान्य जीवन में भले ही व्यक्ति नशा न करता हो, लेकिन एक ही तरह का जीवन जीते हुए वह यांत्रिक ढंग से कार्य करने लगता है, उसे होश ही नहीं रहता कि वह क्या कर रहा है ? उसे अपने द्वारा किए जाने वाले कार्यों पर ध्यान ही नहीं रहता। वह अपना कार्य करते हुए भी मन से कहीं और रहता है, इसे ही बे-मन से कार्य करना या बेहोशी में कार्य करना कहते हैं और ऐसी स्थिति में व्यक्ति द्वारा की गई गलतियाँ सबसे अधिक होती हैं। अपनी गलतियों को यदि सुधारना है तो सचेत रहने, होशपूर्ण व जाग्रत रहने की जरूरत है।

इसके अतिरिक्त बातचीत करते समय, दूसरों के साथ व्यवहार करते समय भी सजग रहने की जरूरत है; क्योंकि इस दौरान व्यक्ति से अनजाने में ही सबसे अधिक गलतियाँ हो जाती हैं और इसका परिणाम भी उसे लंबे समय तक भोगना पड़ता है। युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव के अनुसार—"मूर्ख वे हैं, जो बोलने के बाद सोचते हैं और समझदार वे हैं, जो सोचते पहले हैं बोलते बाद में हैं।" निश्चित रूप से बोलने से पहले विचार करने पर बातचीत संबंधी गलतियाँ कम-से-कम होती हैं और इससे व्यक्ति की समझदारी का भी पता चलता है। इसके अतिरिक्त स्वभाव में विनम्रता, वाणी में मिठास, क्षमा-भाव और जीवन व लक्ष्य के प्रति सजगता हमें हमारी गलतियों से उबरने में मदद करते हैं। ❑

स्वर्ग में किसी की शोभायात्रा निकल रही थी। किसी ने पूछा—"इस पालकी में कौन बैठा है ?" उत्तर मिला—"एक शेर बैठा है।" प्रश्नकर्त्ता ने पूछा—"उसे स्वर्ग का वैभव कैसे प्राप्त हुआ ?" उत्तर मिला—"एक रात को बहुत आँधी, तूफान व बरसात होने लगी थी। शेर अपनी गुफा को लौट रहा था। उसे गंध से मालूम पड़ा कि उसकी अँधेरी गुफा में एक बकरी आकर बैठ गई है।

"शेर ने विचार किया कि बकरी अगर मुझे देख लेगी तो भयभीत हो जाएगी, इसलिए वह गुफा के बाहर ही बैठ गया। वह रात भर पानी में भीगता रहा और बकरी को कष्ट न हो, इसलिए स्वयं कष्ट उठाता रहा। बकरी के प्राण बचाने के पुण्य के फलस्वरूप ही उसको स्वर्ग मिला है।" परोपकार कभी व्यर्थ नहीं जाता।

अद्भुत है ध्यान की महिमा

ध्यान स्वयं को विचारों से भरना नहीं, विचारों से रिक्त करना है, विचारों से मुक्त करना है; क्योंकि ध्यान विचारशून्य होना है। ध्यान क्रिया नहीं, बल्कि अवस्था है। ध्यान वह अवस्था है, जब चेतना एकाकी रह जाए। जो हम प्रयोग करते हैं, किसी रूप, रंग, छवि, वस्तु, विषय आदि पर मन को टिकाने का, केंद्रित करने का, वास्तव में वह धारणा है, ध्यान नहीं। विचार व धारणा को ही लोग ध्यान समझकर बैठ जाते हैं, पर ये सही नहीं है। योगसूत्र—3/1 में महर्षि पतंजलि स्पष्ट रूप से कहते हैं-

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा॥

अर्थात—शरीर के बाहर या भीतर कहीं भी, किसी एक देश में चित्त को ठहराना धारणा है।

कहने का तात्पर्य यह है कि नाभिचक्र, हृदयकमल आदि शरीर के भीतरी देश हैं और आकाश, सूर्य, चंद्रमा, देवता या कोई भी मूर्ति तथा पदार्थ बाहर के देश हैं। अत: उनमें से किसी एक देश में चित्त की वृत्ति को लगाने का नाम 'धारणा' है। हम धारणा के अभ्यास में चित्त को लगाने का बारंबार अभ्यास करते हैं, प्रयास करते हैं। इस प्रकार यह एक क्रिया है, यह धारणा है। जब यही धारणा प्रगाढ़ हो जाती है, गहरी और फिर और गहरी हो जाती है तब यही ध्यान बन जाती है। धारणा जैसे ही गहरी हुई कि उसी पल ध्यान घटित हो जाता है। इसमें कोई क्रिया, कोई प्रयास नहीं हुआ। यह धारणा की गहराई में स्वयं ही घटित हो गया। अस्तु ध्यान किया नहीं जाता, वरन स्वयमेव हो जाता है। महर्षि पतंजलि योगसूत्र—3/2 में ध्यान को परिभाषित करते हुए कह रहे हैं—

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्॥

अर्थात—वृत्ति का एक दिशा में चलना ही ध्यान है। केवल ध्येयमात्र की एक ही तरह की वृत्ति का प्रवाह चलना, उसके बीच में किसी भी दूसरी वृत्ति का न उठना 'ध्यान' है।

शरीर के बाहर या भीतर किसी वस्तु, विषय, विचार पर चित्त को लगाने का, टिकाने का, रोकने का, केंद्रित करने का जो हम प्रयोग करते हैं, वह अवश्य ही ध्यान नहीं धारणा है, पर धारणा का महत्त्व तो है ही; क्योंकि धारणा की गहराई में ही ध्यान घटित होता है और फिर ध्यान की गहराई में समाधि भी घटित होती है। इसलिए इसे स्पष्ट करते हुए महर्षि पतंजलि योगसूत्र—3/3 में कह रहे हैं—

तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः॥

अर्थात—जब ध्यान में चित्त का निजस्वरूप शून्य-सा हो जाता है, तब वहीं समाधि घट जाती है। उस समय उस ध्यान का ही नाम समाधि हो जाता है।

हम जो भी प्रयोग करते हैं, धारणा करते हैं, उसे हम करें अवश्य; पर धारणा को ध्यान समझ लेने की भूल तो कदापि न करें; क्योंकि तब हमारी यात्रा अधूरी ही रहेगी। धारणा से होते हुए ध्यान में डूबते हुए, मिटते हुए हमें समाधिस्थ होना है, समाधि में पहुँचना है। ध्यान का मतलब ही है कि हमें हमारे चित्त के विकारों, विचारों, संस्कारों का स्मरण नहीं विस्मरण करना है, विसर्जन करना है, समापन करना है और सदा के लिए अंत करना है। ऐसा होते ही सचमुच वहाँ अकेली चेतना ही रह जाएगी और चेतना की वह एकाकी अवस्था ही ध्यान है। अस्तु साधनापथ पर हमें कभी हताश, निराश, अधीर, शंकालु तो होना ही नहीं है।

शास्त्रों में योग-साधना संबंधी कही गई एक-एक बात अक्षरश: सत्य है। हमें तो बस, योगपथ पर सद्गुरु के मार्गदर्शन में निरंतर चलते भर रहना है। आज नहीं तो कल हमें हमारी मंजिल मिलेगी ही। एक दिन वह पल, वह लम्हा, वह क्षण आएगा अवश्य, जब हमारे विचार भी विलीन हो जाएँगे और विकार भी, विषय भी विलीन हो जाएँगे और चित्त के समस्त संस्कार भी। जब सब विलीन हो जाएँगे, तब जो शेष रहेगा वही हमारे अंतस् में जगमगाती हमारी आत्मज्योति होगी, हमारी चेतना होगी।

हमारा प्रयास यही हो कि हमें निरंतर ध्यान में ही रहना है, ध्यान में ही डूबना है और ध्यान में ही मिटना है। फिर ध्यान के उस गहरे मौन में मिटते ही, हमें हमारे

अंतस् में—परमेश्वर द्वारा स्थापित जगमगाती आत्मज्योति के दर्शन होंगे, दीदार होंगे, तब कुछ और देखना शेष नहीं रह जाएगा; क्योंकि तभी हमें आत्मचेतना, आत्मज्योति के परमात्मचेतना, परमात्मज्योति से मिलन की, सम्मिलन की परम अनुभूति होगी।

यदि सचमुच एक बार ऐसा हो गया तब हर पल, हर क्षण हम स्वाभाविक रूप से ध्यान में ही होंगे, समाधि में ही होंगे। खाते हुए, खेलते हुए, सोते हुए, जागते हुए, चलते हुए, दौड़ते हुए, हर पल हमें ध्यान में, समाधि में होने की परम अनुभूति होगी। तब हम देह में तो होंगे, पर फिर भी विदेह होंगे, तब हम संसार में तो होंगे, पर संसार हममें नहीं रह सकेगा। तब हम पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय रिश्तों में तो होंगे, पर रिश्तों का कोई बंधन न होगा, तब हम सचमुच जन्म और मरण के बंधन से भी मुक्त हो चुके होंगे। सांसारिक कर्त्तव्यों का कुशलतापूर्वक निर्वाह करते हुए एक आध्यात्मिक आनंद से सराबोर होंगे। तब हर पल, हर क्षण, हर जगह हमें ईश्वर की अनुभूति होगी। योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण गीता—6/19, 20 में हमें यही कह रहे हैं—

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः॥
यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति॥

अर्थात—जिस प्रकार वायुरहित स्थान में स्थित दीपक चलायमान नहीं होता, वैसी ही उपमा परमात्मा के ध्यान में लगे हुए योगी के जीते हुए चित्त की कही गई है। योग के अभ्यास से निरुद्ध चित्त उस अवस्था में परमात्मा के ध्यान से शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धि द्वारा परमात्मा को साक्षात् करता हुआ सच्चिदानंदघन परमात्मा में ही संतुष्ट रहता है।

ध्यान की गहन व चरम अवस्था में ही बुद्ध को बोध प्राप्त हुआ। ध्यानावस्था में ही महावीर, भगवान महावीर हो गए, ध्यान की अवस्था में ही स्वामी विवेकानंद को ईश्वर की अनुभूति हुई, ध्यानावस्था में ही महर्षि अरविंद को अलीपुर जेल में भगवान श्रीकृष्ण के दर्शन हुए, ध्यान के गहरे मौन में ही महर्षि रमण को 'मैं क़ौन हूँ' की सच्ची व गहरी अनुभूति हुई, ध्यान की गहन अवस्था में ही युगऋषि श्रीराम शर्मा आचार्य जी को 15 वर्ष की अवस्था में, वसंत पंचमी के पावन अवसर पर हिमालयवासी परमपूज्य स्वामी श्री सर्वेश्वरानंद जी महाराज का साक्षात्कार हुआ। ध्यान में ही उन्होंने अपने पिछले तीन जन्मों की झाँकी देखी व बाद में आदिशक्ति माँ गायत्री का भी साक्षात्कार किया।

अतः बड़ी अद्भुत है ध्यान की महिमा, बड़ी अलौकिक है ध्यान की महिमा। इसलिए बुद्ध का जोर ध्यान पर है, कबीर का जोर ध्यान पर है, महर्षि रमण, महर्षि अरविंद, स्वामी विवेकानंद, परमहंस योगानंद एवं परमपूज्य गुरुदेव आदि महान योगियों का जोर ध्यान पर है। ध्यानी व ध्यानसिद्ध व्यक्ति की दृष्टि जिधर पड़ जाती है, वहीं आनंद का साम्राज्य छा जाता है। उनके आभामंडल में प्रवेश करते ही हमारे रोम-रोम पुलकित हो उठते हैं, हमारे विषय-विकार धुलने लग जाते हैं, चित्त निर्मल होने लगता है। महर्षि रमण, महर्षि अरविंद, स्वामी विवेकानंद व परमपूज्य गुरुदेव श्रीराम शर्मा आचार्य जी के अखंड आध्यात्मिक ऊर्जा से भरे आभामंडल में प्रवेश करते ही साधकों को असीम आनंद व शांति की अनुभूति होती थी।

प्रसिद्ध घटना है कि गहन वन के बीच से निर्भीक, निर्भय हो गुजर रहे बुद्ध को किसी ने पीछे से आवाज दी—ठहर जा! बुद्ध पीछे मुड़े और देखा एक भयावह व्यक्ति खड़ा है, गले में उँगलियों की माला पहन रखी है। वह व्यक्ति और कोई नहीं, बल्कि अंगुलिमाल था, जिसने अनेकों का वध किया था और उसका नाम सुनकर ही लोग काँप उठते थे। बुद्ध ने उसे गौर से देखा और मानो उसके कई जन्मों को एक साथ देख लिया। बुद्ध समझ गए यह व्यक्ति पिछले कई जन्मों से अपने चित्त के प्रबल संस्कारों के प्रबल प्रवाह में बस यों ही बहता आ रहा है।

बुद्ध मुस्कराए, अपनी करुणा भरी दृष्टि उस पर डाली और बोले—"वत्स! मैं तो वर्षों पहले ठहर चुका हूँ, तुम कब ठहरोगे? शरीर से मैं कहीं भी जाऊँ, पर मेरा मन स्थिर हो चुका है।" बुद्ध के अपूर्व तेज, चेहरे पर छाई असीम शांति, अधरों पर छाई करुणामयी मुस्कान व नेत्रों से झरती, बहती ध्यान ज्योति के एक स्पर्श मात्र से अंगुलिमाल मानो कुछ पल के लिए ही सही, पर ठहर अवश्य गया। अंगुलिमाल का चित्त तब पवित्र होने लगा और तभी से वह अंगुलिमाल से बौद्ध भिक्षु बन गया। अब हम भी ध्यान में उतरकर, ध्यान में डूबकर, ध्यान में मिटकर स्वयं की मुक्ति का प्रयास करें तो जीवन बदल सकता है। ☐

बालों का है विशेष महत्त्व

सिर पर मौजूद बाल हमारे शरीर की सुंदरता को बढ़ाते हैं, लेकिन शरीर में, विशेष कर सिर में इनकी मौजूदगी कुछ विशेष अर्थ भी प्रकट करती है। हमारे शरीर में कई ऐसे केंद्र मौजूद हैं, जो बहुत संवेदनशील हैं। ये केंद्र ऊर्जा से भरपूर होते हैं तथा इन्हें सुरक्षा की विशेष आवश्यकता होती है, इसीलिए प्रकृति ने स्वत: ही इनकी सुरक्षा हेतु इन स्थानों को चिह्नित करते हुए बालों से ढक दिया है।

हमारे शरीर में सबसे अधिक बालों का घनत्व सिर के हिस्से में होता है, इसके अतिरिक्त पुरुषों की दाढ़ी में भी घने बाल उगते हैं। बालों की स्थिति को देखकर व्यक्ति के स्वास्थ्य का भी आकलन किया जा सकता है। बालों की स्थिति को देखकर व्यक्ति की उम्र का भी अंदाजा लगाया जा सकता है। सबसे अधिक घने बाल बाल्यावस्था व किशोरावस्था में होते हैं, युवावस्था में भी बालों की रौनक देखते ही बनती है, लेकिन प्रौढ़ावस्था की ओर बढ़ने पर बाल प्राय: सफेद होने लगते हैं और झड़ने लगते हैं।

बालों से संबंधित कई तरह की मान्यताएँ सदियों से चली आ रही हैं। जैसे—प्राचीन ग्रीस में लंबे बालों को संपन्नता और शक्ति का प्रतीक माना जाता था। वैज्ञानिक भी इस बात की पुष्टि कर चुके हैं कि लंबे बाल उत्पादकता और यौवन की निशानी हैं। प्राचीन भारत में ऋषि-मुनियों के भी लंबे बाल होते थे और वे अपने बालों में गाँठ लगाकर रखते थे। सिर के ऊपर बालों की यह गाँठ ललाट के चुंबकीय क्षेत्र को सक्रिय कर मस्तिष्क के केंद्र में पीनियल ग्रंथि को उत्तेजित करती है। पीनियल ग्रंथि की इस सक्रियता के परिणामस्वरूप एक स्राव होता है, जो उच्च बौद्धिक कार्यकलाप के विकास के लिए जरूरी है।

बालों के विशेषज्ञों के अनुसार, सिर के बाल जब अपनी पूर्ण और परिपक्व लंबाई के होते हैं तो वे प्राकृतिक रूप से फॉस्फोरस, कैल्सियम और विटामिन डी को प्राप्त करते हैं, जो शरीर के विभिन्न क्रियाकलापों के कुशल संचालन के लिए अत्यंत आवश्यक तत्त्व हैं। इनके कारण हमारी स्मृति क्षमता बेहतर बनती है, शारीरिक ऊर्जा में बढ़ोत्तरी तथा हमारी सहनशक्ति में वृद्धि होती है।

कहीं-कहीं पर बालों को शरीर के एंटीना की संज्ञा दी गई है और ये सूर्य की ऊर्जा को इकट्ठा कर मस्तिष्क के भीतर तक पहुँचाते हैं। इस तरह बाल शरीर की विद्युत चुंबकीय ऊर्जा का एक कंडक्टर कहे जा सकते हैं। कुछ शोधकर्त्ताओं के अनुसार, सिर के शीर्ष के बाल शरीर में ऊर्जा का संचालन करते हैं और शरीर के पूरे विद्युत चुंबकीय क्षेत्र को संतुलित करते हैं, जिससे व्यक्ति को अपनी जीवनीशक्ति और अंतर्ज्ञान बढ़ाने में मदद मिलती है।

भारतीय साधनाग्रंथों के अनुसार, शिखास्थान मस्तिष्क की नाभि के समान है। दूसरे शब्दों में इसे मस्तिष्क का हृदय भी कह सकते हैं। इस केंद्रस्थान एवं इससे संबंधित चार दिशाओं में पाँच शक्तियाँ रहती हैं—विवेक शक्ति, दृढ़ता शक्ति, दूरदर्शिता शक्ति, प्रेम शक्ति और संयम शक्ति। इन पाँचों की जड़—शिखा मूल में है। मस्तिष्क का हृदय होने तथा पाँच महत्त्वपूर्ण शक्तियों का केंद्र होने के कारण इस स्थान का महत्त्व शरीर के सब स्थानों से बढ़कर हो जाता है। अत: इस स्थान को स्वस्थ एवं सुरक्षित रखने का सर्वोत्तम तरीका 'केशाच्छादित' रखना है।

हमारे बालों में बाहरी वातावरण के शरीर पर पड़ने वाले प्रभाव को रोकने की शक्ति है। शिखास्थान पर बाल रहने से बाहरी अनावश्यक सरदी व गरमी का सीधा प्रभाव शरीर पर नहीं पड़ पाता और इस तरह शरीर बाहरी वातावरण के बदलते मौसम से स्वयं को सुरक्षित रखने व संतुलन स्थापित करने में सक्षम होता है। बालों का सुरक्षा कवच होने से शरीर के मर्मस्थान भी सुरक्षित रहते हैं और उनमें कोई विकार सहजता से उत्पन्न नहीं हो पाता। यही कारण है कि गुरुकुल परंपरा में शिष्यों की बड़ी-बड़ी शिखाएँ होती थीं।

भारतीय परंपराओं में प्रायश्चित कर्म के रूप में सिर मुड़ाने का विधान है। इसके अतिरिक्त किसी स्वजन की मृत्यु हो जाने पर भी मुंडन कराया जाता है। इस मुंडन का अर्थ है—मन को शिथिल करके शोक मनाना। भारतीय संस्कृति में संन्यास परंपरा में भी सिर मुड़ाने का विधान है। इसका कारण यह है कि बाल हमारे शरीर का एक अभिन्न अंग हैं, शरीर की सुंदरता को बढ़ाते हैं और बालों से लोगों की आसक्ति भी होती है। चूँकि संन्यास परंपरा में त्याग व अनासक्ति को विशेष महत्त्व दिया जाता है, इसलिए इसमें बाल मुड़ाने का विधान है।

हमारे सिर के बाल प्रतिमाह लगभग डेढ़ इंच की दर से बढ़ते हैं। इनकी आयु दो से आठ साल तक होती है। उसके बाद पुनः नए बाल आते हैं। हमारे शरीर के अन्य हिस्सों के बाल एक निश्चित वृद्धि के बाद रुक जाते हैं, लेकिन सिर के बाल हर छह महीने बाद बदलते रहते हैं। शरीर के अन्य स्थानों की अपेक्षा सिर के बालों का महत्त्व अधिक है और ये बाल हमारी दृढ़ता का भी प्रतीक हैं। यही कारण है कि गुरु गोविंद सिंह ने बालों के महत्त्व पर जोर देते हुए उन्हें लोगों के स्वाभिमान से जोड़कर देखा।

बालों के निर्माण में प्रोटीन का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। घने व लंबे बालों से यह पता चलता है कि व्यक्ति शारीरिक रूप से स्वस्थ है। जहाँ तक साधु-संतों द्वारा लंबे बाल रखने की परंपरा की बात है तो ऐसे लोग अपरिग्रही होते हैं, इनके पास अपने बालों को काटने के साधन नहीं होते, इसके अलावा ये अपनी साधना आदि में ही इतने मग्न रहते हैं कि बालों के रखरखाव व सुंदरता के ऊपर इनका ध्यान ही नहीं जा पाता, फलस्वरूप इनके बाल जटा रूप में बढ़ जाते हैं।

बालों को सँवारने का तरीका व्यक्ति को उसकी एक पहचान देता है। बालों का सही ढंग से रखरखाव बालों की आयु बढ़ाता है, वहीं यदि बालों का सही ढंग से रखरखाव न किया जाए तो यह त्वचा संबंधी विकारों का भी कारण बन जाता है। बालों में व्यक्ति की प्राण-ऊर्जा प्रवाहित होती है, इसलिए बालों की स्थिति देखकर व्यक्ति की प्राणशक्ति का भी अनुमान लगाया जा सकता है। बालों की जड़ों के माध्यम से हमारे शरीर में असंख्य छिद्र होते हैं, जो शरीर के बाह्य एवं आंतरिक वातावरण को संतुलित करते हैं और इनके माध्यम से हमारा शरीर वातावरण के साथ अनुकूलता स्थापित करने में सक्षम होता है।

हमारी शारीरिक व मानसिक स्थिति का सबसे अधिक प्रभाव हमारे बालों पर पड़ता है और यही कारण है कि बीमार होने पर व ज्यादा तनाव-चिंता से ग्रसित होने पर बाल कमजोर हो जाते हैं और अधिक झड़ने लगते हैं। इन तथ्यों के आधार पर ही बालों का विशेष महत्त्व माना गया है। ❑

एक सेठ जी के चार बहुएँ थीं। वे उग्र स्वभाव की थीं। सेठ जी के घर में हर समय लड़ाई-झगड़ा तथा कलह-क्लेश होता रहता था। एक रात को सेठ जी को स्वप्न में लक्ष्मी जी ने आकर कहा—"मैं तुम्हारे घर से अब जा रही हूँ। कलह-क्लेश वाले स्थान पर रुक पाना मेरे लिए संभव नहीं है।" यह सुनकर सेठ जी रोने लगे और उनसे न जाने की विनती करने लगे। लक्ष्मी जी द्रवित होकर बोलीं—"क्लेशयुक्त वातावरण में रह पाना मेरे लिए संभव नहीं, पर तुम्हें एक वरदान दे सकती हूँ। जो चाहो, वो माँग लो।" सेठ जी बोले—"आप मुझे यह वरदान दें कि मेरे घर में प्रेम व एकता हो जाए।" लक्ष्मी जी 'तथास्तु' कहकर अंतर्धान हो गईं और वहाँ से चली गईं। दूसरे ही दिन से सेठ जी के घर में सभी प्रेम से रहने लगे और उनका कलह समाप्त हो गया। सेठ जी ने पुनः स्वप्न देखा कि लक्ष्मी जी उनके घर फिर से रहने आ गई हैं और कह रही हैं—"जहाँ प्रेम व एकता होते हैं, वहाँ मैं स्वतः आ जाती हूँ।"

आध्यात्मिक चिंतन को उन्मुख होता जनमानस

पूरा विश्व आज परिवर्तन के तीव्र चक्र से गुजर रहा है। नए-नए प्रतिमान गढ़े जा रहे हैं और पुराने टूट रहे हैं। विज्ञान और आधुनिकता के गर्भ से सभ्यता-संस्कृति के नए मूल्य व तौर-तरीके उभर रहे हैं। धर्म जो कभी सर्वशक्तिमान स्वरूप लिए था, क्रमशः अपनी पकड़ खो रहा है। नई पीढ़ी धर्म के बजाय अध्यात्म से स्वयं को जोड़ने में गौरव व सुकून की अनुभूति पा रही है। वास्तव में पूरा विश्व तीव्रता से अध्यात्म की ओर उन्मुख हो रहा है।

हालाँकि इसकी शुरुआत 19 वीं सदी के उत्तरार्द्ध में हुई थी, जब नए युग की आध्यात्मिकता का आगाज पश्चिम में हुआ था। वैज्ञानिक युग में शिक्षित-दीक्षित आधुनिक पीढ़ी में पारंपरिक धर्म के अवैज्ञानिक और जकड़न भरे स्वरूप के प्रति वितृष्णा एवं विद्रोह का भाव पनपा, जिसके चलते वे धर्मनिरपेक्ष स्थिति की ओर बढ़े और आज अंततः अध्यात्म की ओर उन्मुख होते दिख रहे हैं। प्रारंभ में वहाँ अध्यात्म उनके स्वास्थ्य, फिटनेस, अध्ययन, खान-पान, दिनचर्या का अभिन्न हिस्सा बना और धीरे-धीरे यह लहर 90 के दशक तक पश्चिम में पूरी तरह छा गई। सर्वेक्षण शोध के आधार पर भी विकसित एवं औद्योगिक देशों का अध्यात्म के प्रति बढ़ता रुझान स्पष्ट है।

भारत में भी इसी दौरान उदारीकरण की शुरुआत हुई थी। देश भूमंडलीकरण के दौर में प्रविष्ट हुआ और देखते-देखते पूरा विश्व एक ग्राम में तब्दील हो गया। संचार के माध्यमों का विकास भी इस अवधि में इतनी तीव्रता से हुआ है कि आज हम बैठे-बैठे एक क्षण में विश्व के किसी भी कोने से पलक झपकते संपर्क साध सकते हैं।

इसके साथ ही विभिन्न सभ्यताओं-संस्कृतियों का संपर्क अत्यंत सरल हो गया है और इनके बीच आदान-प्रदान तेजी से हो रहा है। इनसान-को-इनसान से विभाजित करने वाली बाहरी रेखाएँ तेजी से मिट रही हैं। साथ ही यह भी सत्य है कि परिवर्तन की लहर के साथ समायोजन न कर पाने वालों का भी एक वर्ग है, जिनके अपने दुराग्रह हैं। अपने धर्म, संप्रदाय एवं मत को लेकर उनके तेवर और उग्र हो रहे हैं। विश्व में आतंकवाद, विश्वयुद्ध, जातीय हिंसा-अपराध आदि के रूप में व्याप्त समस्याएँ इसी पृष्ठभूमि में पैदा होती देखी जा सकती हैं।

वस्तुतः पूरा विश्व एक नए युग में प्रवेश कर चुका है। परिवर्तन का चक्र इतना तीव्र है कि नए और पुराने के बीच का संतुलन नहीं बैठ पा रहा है। व्यक्ति नई परंपराओं के साथ उभर रहे मूल्य और पारंपरिक प्रचलनों के बीच गहरी खाई पाता है। परिणामस्वरूप बड़ी तीखी खींच-तान चल रही है, जिसका दबाव इनसान का मन-मानस अनुभव कर रहा है। उद्विग्नता, बेचैनी, तनाव भरे इस युग की व्यथा एवं इसके बीच विकल्प की तलाश में भटक रहे आधुनिक इनसान के हालात बहुत कुछ रेगिस्तान में मृगमरीचिका के पीछे भटक रहे प्यासे यात्री के समान हैं।

ऐसे में आश्चर्य नहीं कि व्यक्ति का रुझान अध्यात्म के प्रति तीव्रता से बढ़ रहा है। देश-विदेश से उठ रही इस माँग को पूरा करने के लिए कितने ही योगगुरु एवं आध्यात्मिक विद्या में निष्णात व्यक्ति प्रयासरत हैं। एक शोध के अनुसार औद्योगिक एवं विकसित देशों में 20वीं सदी के अंत तक अधिकांश लोग स्वयं को धार्मिक की अपेक्षा आध्यात्मिक कहलाना ज्यादा पसंद करते हैं, जो इनके अध्यात्म के प्रति बढ़े रुझान को स्पष्ट करता है।

आश्चर्य नहीं कि आज का युवा अध्यात्म में अच्छी खासी रुचि रखता है। वह धर्म के आध्यात्मिक पक्ष के प्रति अधिक रुझान रखता है। यदि वह धर्म को निभाता भी है तो उसके इसके अपने मौलिक तरीके हैं। कुछ लोग सप्ताह के अंत में मंदिर, गुरुद्वारे, चर्च, मसजिद आदि अपने-अपने धर्मस्थलों में जाते हैं। आध्यात्मिक पुस्तकों के अध्ययन से लेकर ध्यान आदि की क्रियाओं में उनकी सक्रिय भागीदारी देखी जा सकती है।

आज का ज्ञान-विज्ञान भी अपने विकास के चरम पर अध्यात्म की ओर उन्मुख दिखता है। भौतिकी में क्वांटम सिद्धांत की अवधारणा इसी तथ्य की ओर संकेत कर रही है। जीव विज्ञान भी जीन के रहस्यों के साथ

मानव की **जीनोम कुंडली** तैयार कर रहा है और **गॉड पार्टिकल** की बातें हो रही हैं। मनोविज्ञान पारंपरिक व्यवहार-मनोविश्लेषण-मानवतावाद से आगे बढ़कर साइकोसिंथेसिस व ट्रांसपर्सनल मनोविज्ञान में अपनी पूर्णता खोज रहा है। मानव मन के गूढ़ रहस्यों की खोज में वह परामनोवैज्ञानिक क्षेत्र में प्रवेश कर चुका है। इसी तरह समग्र स्वास्थ्य की खोज में मानव, आध्यात्मिक आयाम को जोड़ चुका है।

सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में अध्यात्म का पदार्पण हो रहा है। पर्यटन हो या पत्रकारिता—इनमें भी आध्यात्मिक आयाम जुड़ चुका है। मीडिया के क्षेत्र में धर्म-अध्यात्म को लेकर कितने सारे चैनल आ गए हैं। इनकी गुणवत्ता प्रश्नों के घेरे में हो सकती है, लेकिन बदलते जमाने की हवा इनमें साफ है। इसी तरह समाचार पत्र-पत्रिकाओं में अध्यात्म विषयक सामग्री का दायरा बढ़ता जा रहा है। पूरे विश्व को जोड़ते इंटरनेट में इसकी झलक स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है।

पर्यावरण-पारिस्थितिकी के क्षेत्र में आई विकृतियों से निपटने के लिए डीप इकोलॉजी की अवधारणा प्रकृति में अंतर्निहित आध्यात्मिक तथ्यों की व्याख्या कर रही है। प्रकृति के मूल में निहित मूलभूत एकता एवं इसके विभिन्न घटकों के अंतर्संबंध एवं परस्पर निर्भरता की समझ ही प्रस्तुत पर्यावरण संकट से मानवता को बचा सकती है। मनुष्य के दृष्टिकोण को बदलने के लिए साहित्य का सृजन आवश्यक है। यह एक सुखद संयोग है कि इनसान इस दिशा में भी अध्यात्म की ओर उन्मुख हो रहा है।

आज पूरे विश्व में आध्यात्मिक पुस्तकों का बाजार गरम है। प्रबंधन में अध्यात्म का प्रवेश हो चुका है। कितनी सारी पुस्तकें इस विषय को लेकर बाजार में उपलब्ध हैं। इनकी बेस्टसेलर के रूप में रिकॉर्ड बिक्री पाठकों की अध्यात्म के प्रति बढ़ती रुचि को ही स्पष्ट करती है। हर माह अध्यात्म के गूढ़ पक्षों एवं ध्यान आदि पर छप रही पुस्तकों की भरमार इस लहर के प्रभाव को और स्पष्ट करते हैं। 21 जून को अंतरराष्ट्रीय योग दिवस की घोषणा में भी इसी तथ्य की गूँज देखी जा सकती है, हालाँकि अभी इसके कार्यक्रम सामूहिक स्तर पर अध्यात्म के स्थूलपक्ष तक ही सिमटे दिखते हैं।

इस तरह विज्ञान और भौतिकवाद के चरम विकास पर मनुष्य भली भाँति समझ गया है कि मात्र बाहरी अन्वेषण, सुख भोग करने से जीवन का सही विकास नहीं होने वाला, बल्कि यह एकतरफा विकास अपने साथ में विनाश-विध्वंस के सरंजाम भी लेकर आ रहा है। पर्यावरण संकट से लेकर अमीरों-गरीबों की विषमता, युद्ध का खतरा, आतंकवाद एवं शोषण-भ्रष्टाचार आदि इसी के सूचक हैं। मानव प्रकृति में आई विकृति का समाधान उसकी दैवी प्रकृति एवं अस्तित्व के मूल में छिपे एकता के सूत्रों में सन्निहित है। जीवन के हर क्षेत्र में अध्यात्म के प्रति बढ़ता रुझान इसकी स्वाभाविक परिणति कहा जा सकता है। तमाम विषमताओं एवं निराशा भरे दौर के बीच यह एक सुखद एहसास है कि नए युग का सूत्रपात जैसे होने ही वाला है। ❑

रावण का वध होने के उपरांत हनुमान जी, भगवान श्रीराम की आज्ञा पाकर सीता जी को अशोक वाटिका से लेने आए। वहाँ पहुँचकर वे माँ सीता से बोले—"माँ! आपके आशीर्वाद से रावण का वध हो गया है। भगवान श्रीराम ने आपको ले जाने के लिए मुझे भेजा है। जाने से पहले मैं अशोक वाटिका की राक्षसियों का वध करना चाहता हूँ। इन्होंने आपको बहुत कष्ट दिए होंगे।" माँ सीता बोलीं—"नहीं हनुमान! ये राक्षसियाँ निर्दोष हैं। इन्होंने जो किया, रावण के कहने पर ही किया। ये मेरे साथ बहुत दिनों तक रही हैं—मेरा मन तो यह करता है कि ये जो माँगें, वो मैं इन्हें देकर जाऊँ।" यह सुनकर हनुमान जी भावविभोर हो उठे और बोले—"आप धन्य हैं माँ! जो अपने प्रति कुटिल व्यवहार करने वालों के लिए भी सद्भावना रखती हैं।"

प्रकृति की पाठशाला में होता है सच्चा शिक्षण

मंद-शीतल सलिल हवाओं के झोंके मन को आनंदित कर देने वाले थे। प्राकृतिक हरीतिमा से आच्छादित सरोवर के निकट फैली वृक्ष-लताएँ अपनी उमंग भरी पुलकन को झूम-झूमकर अभिव्यक्त करती दीख पड़ रही थीं। संपूर्ण क्षेत्र ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो वह किसी उत्सव की भागीदारी में लीन हो गया हो।

वसंत ऋतु का समय था। महर्षि जरत्कारू अपने गुरुकुल के निकट स्थित सरोवर के तट पर शिष्यों को संबोधित करते हुए कह रहे थे कि क्या तुमने कभी प्रकृति का दर्शन किया है? शिष्य मंडली में से कुछ ने 'हाँ' कहा तो कुछ प्रश्न की विचित्रता को देखकर कशमकश में पड़ गए। शिष्यों के मानसिक मंथन को देख महर्षि ने अपने-अपने निजी अनुभवों को व्यक्त करने का संकेत दिया। अभिव्यक्तियों के प्रस्तुतीकरण के क्रम में लगभग सभी ने स्थूल प्राकृतिक सौंदर्य की सामान्य-सी व्याख्या की।

क्रम के पूरा हो जाने के उपरांत शिष्यों का ध्यान महर्षि की ओर आकृष्ट हुआ। महर्षि को उन्होंने बड़ी ही विचित्र अवस्था में पाया मानो वे उसी क्षण प्रकृति को निहारते हुए उसके वास्तविक स्वरूप का दर्शन कर रहे हों। विगत क्रम की समाप्ति की उन्हें कोई सुध-बुध न थी। उनके नेत्र तो मानो कहीं जा अटके एवं किसी अभूतपूर्व दर्शन में एकटक लीन हो गए थे। महर्षि की इस विचित्र अवस्था ने शिष्यों को अचंभे में डालकर उन्हें किंकर्त्तव्यविमूढ़ स्थिति में पहुँचा दिया था। उनमें उनसे संवाद का साहस न हुआ। अत: वे सभी अग्रिम आदेश हेतु प्रतीक्षारत शांत यथास्थान बैठे रहे।

महर्षि की यह अवस्था कुछ कम विस्मयकारी न थी। अभी कुछ ही क्षण बीते होंगे कि महर्षि के नेत्रों से आनंदस्वरूप अश्रु झरने लगे। अश्रुओं से अभिपूरित महर्षि के तेजस्वी मुखमंडल को देख यह अनुमान लगा पाना सहज ही था कि सामयिक भाव कृतज्ञता के हैं, जो आनंद की पूर्णता के भी आगे निकल जाने पर नेत्रों से बाहर की ओर छलक आए थे।

भाव की इस दुर्लभ अवस्था को प्रत्यक्ष देख सभी शिष्यों में आनंद का संचार होने लगा एवं वे सभी स्वयं को धन्य अनुभव कर भावविभोर हो रहे थे। एक लंबी-गहरी साँस के साथ महर्षि सामान्य अवस्था में लौटकर अपने शिष्यों को स्नेह भरी दृष्टि से निहारते हुए कहने लगे—"प्रकृति का वास्तविक स्वरूप क्या है? जानना चाहोगे।" शिष्यों में उत्तर को जानने की व्यग्रता थी। महर्षि शिष्यों को संबोधित करते हुए बोले—"प्रकृति अपने वास्तविक स्वरूप में माता के समान है, जो सृष्टि के समस्त प्राणियों की उत्पत्ति से लेकर उनके पालन-पोषण के संपूर्ण भार का वहन स्वयं करती है।"

महर्षि आगे बोले—"प्रकृति के दर्शन की अभिव्यक्ति कदाचित् संभव नहीं। यह तो वैसी ही विवशताजन्य स्थिति है, जिसमें कि पुत्र अपनी माता की भावना व जीवन निर्माण में किए गए योगदान को अभिव्यक्त करने में असमर्थता अनुभव करता है। प्रकृति के मातृत्वभाव व संरचना में निहित उद्देश्यों पर यदि प्रकाश डाला जाए तो तुम सभी इसकी संवेदनशीलता की पराकाष्ठा की कल्पना मात्र से हतप्रभ रह जाओगे। चराचर जगत की हर छोटी-बड़ी आवश्यकताओं की समय पर पूर्ति के साथ ही उनके कल्याण एवं विकास के मार्ग को प्रशस्त करने का कार्य भी यह बड़े ही सुनियोजित ढंग से संपन्न करती है।"

अपनी बात को और स्पष्ट करते हुए महर्षि ने कहा—"प्रकृति से बढ़कर कोई दूसरा गुरु नहीं है। व्यवहार जगत के शिक्षण में जितना महान योगदान प्रकृति का होता है, उतना और किसी का नहीं। जीवन के विभिन्न खट्टे-मीठे अनुभवों एवं साथ ही घटित होने वाले उतार-चढ़ावों के पीछे भी प्रकृति के प्रशिक्षण से संबंधित उच्च उद्देश्य ही निहित होता है, जिसके द्वारा वह जीव के जीवन के विभिन्न आयामों को प्रकाशित करती उसकी पूर्णता का मार्ग प्रशस्त करती है।"

प्रात:कालीन सत्र की इस विशेष प्रेरणा के साथ शिष्यों ने आश्रम की ओर प्रस्थान किया। कृतज्ञ हो वे

सभी शांतभाव से गंतव्य की ओर अग्रसारित हो रहे थे। आज उन्होंने जाना कि शिक्षण हेतु सारी सृष्टि ही उपलब्ध है, जिसका अनंत विस्तार हमें स्वयं भी अनंतता प्रदान कर सकता है।

गुरुकुल व्यवस्था के अंतर्गत कपाट-कोष्ठों में बंदकर विद्यार्थियों को शिक्षण नहीं प्रदान किया जाता है, वरन प्रकृति की महत्ता को स्वीकारते गुरुकुल के अधिष्ठाता विद्यार्थियों की मनोभूमि के अनुरूप उन्हें प्रकृति की पाठशाला में व्यावहारिक शिक्षण देने की ऐसी व्यवस्था बनाते हैं कि व्यक्तित्व में प्रखरता का समावेश व संवर्द्धन होकर ही रहता है।

उस दिन उनके उस उद्बोधन के क्रम ने उनके गुरुकुल में पढ़ रहे एक छात्र निदाध को विशेष रूप से प्रभावित किया। उसने उनसे प्रार्थना की कि वे उसको यह अनुमति दें कि वह प्रकृति की पाठशाला में घूमते हुए जीवन के सत्य ज्ञान का अर्जन कर सके। महर्षि को विद्यार्थी प्रतिभावान लगा, अस्तु उन्होंने उसे कुछ ग्रंथ ज्ञानार्जन हेतु सौंपे व साथ ही सौ गायें भी सौंपीं और यह आदेश दिया कि वह आश्रम तब लौटे, जब वे गायें हजार गायों में बदल जाएँ।

गुरु-आदेश परिपालन हेतु निदाध निकल पड़ा। उसे बीस वर्ष लगे और इस अवधि में गायों की संख्या हजार हो गई। वे सभी हृष्ट-पुष्ट अवस्था में थीं। इस बीच उसे प्रकृति सान्निध्य एवं गुरु के परोक्ष संरक्षण में अनेकों के साथ संपर्क साधने और परामर्श करने का अवसर मिला। गुरु की आज्ञा, ईश्वरविश्वास व प्रकृति के साहचर्य में मार्ग की सभी कठिनाइयों और समस्याओं से वह निपटता रहा। निरंतर संघर्ष व अध्यवसाय का ही प्रतिफल था कि कालांतर में उसकी प्रतिभा निखर पड़ी। जब वह वापस लौटा तो उसके मुखमंडल पर ब्रह्मतेज को झलकते स्पष्ट देखा जा सकता था।

प्रकृति की पाठशाला में अपनी बुद्धि के सम्यक प्रयोग से जो उसने समझा और सीखा था, वह आश्रम के भीतर रह रहे विद्यार्थियों से कहीं अधिक था। महर्षि जरत्कारू अपने इस शिष्य के साहस को देखकर अतीव प्रसन्न हुए। अपने आश्रम हेतु उन्हें एक समर्थ उत्तराधिकारी की तलाश थी, सो वह इस परीक्षा के माध्यम से प्राप्त भी हो चुकी थी। वे उसे आशीर्वादस्वरूप आश्रम संबंधी समस्त कार्यभार सौंप स्वयं अन्यत्र बड़े कार्यों हेतु निकल गए। ☐

पं. मदन मोहन मालवीय सन् 1931 में गांधी जी के साथ गोलमेज कॉन्फ्रेंस में भाग लेने लंदन गए। लंदन में सुबह उन्होंने स्नान करके अपने सामान में से भगवान श्रीकृष्ण का चित्र, गीता की प्रति, गंगाजल, तुलसीदल आदि निकाले। माथे पर उन्होंने तिलक लगाया और श्रीकृष्ण का चित्र सामने प्रतिस्थापित कर पूजा करने लगे। गांधी जी ने उन्हें पूजा करते देखा तो बोले—''पंडित जी! आप गीता व गंगाजल यहाँ लाना भी नहीं भूले। मैं आपकी ईश्वरनिष्ठा के समक्ष नतमस्तक हूँ।'' मालवीय जी ने कहा—''गांधी जी! गीता-भागवत के इस सिद्धांत पर मेरा दृढ़ विश्वास है कि शरीर क्षणभंगुर है और न जाने कब प्राण मेरा साथ छोड़ दें। यदि अंतिम समय अपनी पावन मातृभूमि का सान्निध्य न भी मिल सके तो कम-से-कम गंगाजल, तुलसीदल को मुँह में डालने का सौभाग्य तो प्राप्त हो जाएगा। इसीलिए प्रतिक्षण मृत्यु का स्मरण करते हुए काशी की पावन मिट्टी तथा तुलसीदल, गंगाजल सदा साथ रखता हूँ।'' गांधी जी, मालवीय जी की अपनी मातृभूमि तथा धर्म के प्रति अनन्य निष्ठा को देखकर गद्गद हो उठे।

भावों से करें भगवान की पूजा

ईश्वर सर्वव्यापी है, सर्वशक्तिमान है, सर्वज्ञ है और सर्वसमर्थ भी। संसार में जो भी कुछ है, वह सब ईश्वर की ही देन है। यह सारा संसार, यह समस्त सृष्टि भी स्वयं ईश्वर की ही रचना है। जब सब कुछ ईश्वर का ही है, तब हम ईश्वर की पूजा-आराधना भला किस प्रकार और किन सामग्रियों से करें; क्योंकि वे सारी सामग्रियाँ, यथा—पुष्प, विल्वपत्र, फल आदि तो ईश्वर को स्वत: ही समर्पित हैं। शास्त्रों में ईश्वर की पूजा-आराधना के विविध विधि-विधान बताए गए हैं। उन्हीं में से एक है मानस पूजा।

मानस पूजा अर्थात मन से भगवान की पूजा। कहते हैं पूजन के विधि-विधानों में मानस पूजा सर्वश्रेष्ठ व सबसे अधिक प्रभावशाली है। भौतिक सामग्रियों से की गई ईश्वर की पूजा की अपेक्षा मन से की गई ईश्वर की पूजा को करोड़ों गुना अधिक फलदायी व प्रभावकारी बताया गया है। मन:कल्पित यदि एक पुष्प भी चढ़ा दिया जाए तो वह एक पुष्प भी करोड़ों बाह्य पुष्पों के बराबर होता है।

भौतिक सामग्रियों से ईश्वर की पूजा का अपना महत्त्व तो है ही, पर मानस पूजा के बिना भौतिक सामग्रियों से की गई पूजा भी प्रभावकारी नहीं हो पाती है। क्यों? क्योंकि ईश्वर तो भाव के भूखे हैं, पदार्थ के नहीं। यदि वे भाव के भूखे न होते तो शबरी के जूठे बेरों को भी स्वीकार कर उसे नवधा भक्ति भला क्यों और कैसे प्रदान करते? फिर वे सूरदास की बाँह भी क्यों पकड़ते? दुर्योधन के छप्पन भोग का परित्याग कर विदुर की पत्नी के हाथों केले के छिलके का भोग भला क्यों और कैसे स्वीकार करते?

वस्तुत: भगवान को किसी वस्तु अथवा पदार्थ की आवश्यकता नहीं, वे तो भाव के भूखे हैं। संसार में ऐसे दिव्य पदार्थ उपलब्ध नहीं, जिनसे परमेश्वर की पूजा की जा सके। इसलिए शास्त्रों में मानस पूजा का विशेष महत्त्व बताया गया है। मानस पूजा में भक्त अपने आराध्य को मुक्तामणियों से मंडित कर स्वर्णसिंहासन पर विराजमान करता है। स्वर्गलोक की मंदाकिनी गंगा के शीतल जल से अपने आराध्य को स्नान कराता है, कामधेनु गौ के दुग्ध से पंचामृत का निर्माण करता है। वस्त्राभूषण भी दिव्य व अलौकिक होते हैं। वह पृथ्वीरूपी गंध का अनुलेपन करता है। अपने आराध्य के लिए कुबेर की पुष्पवाटिका से स्वर्णकमल पुष्पों का चयन करता है। साधक अपने आराध्य से प्रेम की अनंत गहराइयों में उतरकर भावपूर्वक कहता है—

हे प्रभो! मैं पृथ्वीरूपी गंध (चंदन) आपको अर्पित करता हूँ। प्रभो! मैं आकाशरूपी पुष्प आपको अर्पित करता हूँ। प्रभो! मैं वायुदेव के रूप में धूप प्रदान करता हूँ। प्रभो! मैं अग्निदेव के रूप में दीपक प्रदान करता हूँ। हे प्रभो! मैं अमृत के समान नैवेद्य आपको निवेदित करता हूँ। हे प्रभो! मैं सर्वात्मा के रूप में संसार के सभी उपचारों को आपके चरणों में समर्पित करता हूँ। हे प्रभो! अब मेरा अपना कुछ भी नहीं, मैंने अपना तन-मन सब कुछ आपको ही समर्पित कर दिया है। हे प्रभो! आप इसे स्वीकार करें।

हृदय से निकले ये एक-एक शब्द हमारे अंतस् को प्रभुप्रेम की पराकाष्ठा तक पहुँचाते हैं। चित्त एकाग्र व सरस हो जाता है, इससे बाह्य पूजा में भी आनंद की अनुभूति होने लगती है, साथ ही मन—ध्यान व समाधि में डूबने लगता है और इस प्रकार भक्त और भगवान, आराधक और आराध्य, दोनों मिलकर एकरस हो जाते हैं। मानस पूजा में प्रेम, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य ध्यान व समाधि स्वयं ही घटित होने लगते हैं व आराधक को आराध्य के आनंदलोक तक पहुँचा देते हैं, साथ ही अध्यात्म के उच्च शिखर पर भी।

पूजन की प्रचलित विधियों में जहाँ भगवान को भोग व अन्य वस्तुएँ अर्पित करने का विधान है, जिन्हें जुटाना सर्वसुलभ नहीं होता, वहीं मानस पूजा में कल्पना शक्ति के द्वारा ही पलभर में सब कुछ संपन्न हो जाता है। इसमें सिर्फ भक्ति और भावना के साथ कल्पना शक्ति की जरूरत होती है। भगवान पदार्थ से परे हैं और फिर

सामान्य पूजन में भी तो हम विविध सामग्रियों को अर्पित कर अपने भक्तिभाव का ही प्रदर्शन करते हैं। मानस पूजा में न तो सामग्री जुटाने हेतु आर्थिक समस्या आती है और न ही समय की समस्या।

हम तो पल भर में ही ब्रह्मांड की सैर कर आते हैं, और इससे भी परे ब्रह्मलोक, शिवलोक, विष्णुलोक आदि विभिन्न लोकों तक पहुँच अपने आराध्य की आराधना कर आते हैं, व मन:कल्पित विविध दुर्लभ सामग्रियों से अपने आराध्य की आराधना कर लेते हैं। इस प्रक्रिया में हमारा मन निश्चित ही संसार से दूर ईश्वर के चरणों में एकाग्र होने लगता है। इस तरह आराधक जब अपने आराध्य के चरणों में निवेदन करता है, तब उसका मन कितना निहाल व आनंदित होता है इसकी तो बस कल्पना ही की जा सकती है।

इस मन:स्थिति में आराधक को उसके आराध्य सिर्फ मंदिर, मसजिद, गुरुद्वारे व मठों में नहीं, बल्कि इस सृष्टि के कण-कण में, जर्रे-जर्रे में दिखाई पड़ते हैं। तब तो उसे सृष्टि के कण-कण में अपने आराध्य की ही छवि दिखने लगती है। उस स्थिति में कौन अपना और कौन पराया? अद्वैत भावदशा में स्थित आराधक को इसका भान ही कहाँ रहता है? वह तो हर पल अपने आराध्य का आनंदमयी स्पर्श व उनसे हर पल संवाद करते रहने से ही निहाल व प्रशांत रहता है।

मानस पूजा के सर्वश्रेष्ठ व प्रभावशाली रूप के कारण ही आचार्य शंकर ने अध्यात्मपिपासुओं के मार्गदर्शन हेतु शिवमानस पूजा स्तोत्र की रचना की, जिसका भावानुवाद क्रमश: इस प्रकार है—हे दयानिधे! हे पशुपते! यह रत्ननिर्मित सिंहासन, शीतल जल से स्नान, नाना रत्नावलिविभूषित दिव्य वस्त्र, कस्तूरी की गंध से समन्वित चंदन, जूही, चंपा और विल्वपत्र से रचित पुष्पांजलि तथा धूप और दीप यह सब मानसिक (पूजोपहार) ग्रहण कीजिए॥ 1॥

मैंने नवीन रत्नखंडों स्वर्ण से रचित स्वर्णपात्र में घृतयुक्त खीर, दूध और दही सहित पाँच प्रकार के व्यंजन, कदलीफल, शरबत, अनेकों शाक, कपूर से सुवासित और स्वच्छ किया हुआ मीठा जल और तांबूल ये सब मन के द्वारा ही बनाकर प्रस्तुत किए हैं, प्रभो! कृपया इन्हें स्वीकार कीजिए॥ 2॥

छत्र, दो चँवर, पंखा, निर्मल दर्पण, वीणा, भेरी, मृदंग, दुंदुभी के वाद्य, गान और नृत्य, साष्टांग प्रणाम, नानाविध स्तुति—ये सब मैं संकल्प से ही आपको समर्पण करता हूँ। प्रभो! मेरी यह पूजा ग्रहण कीजिए॥ 3॥

हे शंभो! मेरी आत्मा आप हैं, बुद्धि पार्वती जी हैं, प्राण आपके गण हैं, शरीर आपका मंदिर है, संपूर्ण विषय-भोग की रचना आपकी पूजा है, निद्रा समाधि है, मेरा चलना-फिरना आपकी परिक्रमा है तथा संपूर्ण शब्द आपके स्तोत्र हैं, इस प्रकार मैं जो-जो कर्म करता हूँ, वह सब आपकी आराधना ही है॥ 4॥

प्रभो! मैंने हाथ, पैर, वाणी, शरीर, कर्म, कर्ण, नेत्र अथवा मन से जो भी अपराध किए हों, वे विहित हों अथवा अविहित, उन सबको आप क्षमा कीजिए। हे करुणा के सागर श्रीमहादेव शंकर आपकी जय हो।

कहते हैं कोई भी शुभ कर्म बारह वर्ष तक नियमित करने पर अपना फल अवश्य प्रदान करता है। अत: प्रचलित पूजा विधि के साथ-साथ उसमें पूर्व या बाद में मानस पूजा भी नियमित रूप से करते रहें तो यह सुनिश्चित हो सकता है कि उसका फल आज नहीं तो कल अवश्य मिले।

युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव के अनुसार मानस पूजा से साधक के अंदर दिव्य ऊर्जा का प्राकट्य होता है, उसका अंतर्जगत प्रकाशित होने लगता है, साधक को अलौकिक अनुभूतियाँ होने लगती हैं और अंततः वह समाधि की ओर अग्रसर होने लगता है। अत: सचमुच बड़ी अद्भुत है, बड़ी अलौकिक है मानस पूजा। ❑

चिर पुरातन को पुनर्जीवित करने के लिए सतयुग की वापसी जैसा भगीरथ प्रयत्न, शांतिकुंज ने अपने एकाकी बलबूते आरंभ किया है। संकल्प के बल पर ब्रह्मा जी ने समूची सृष्टि रच डाली। फिर ऋषि-परंपरा इतनी मूर्च्छित तो नहीं हुई है कि जिसके पुनरुत्थान की आशा ही छोड़नी पड़े। लक्ष्मण की मूर्च्छा जगी थी। मानवीय गरिमा को पुनर्जीवित करने का संकल्प जगा है तो कल-परसों यह भी तनकर खड़ा होगा।

—परमपूज्य गुरुदेव

चेतना की शिखर यात्रा —194

युवा धर्म की परख

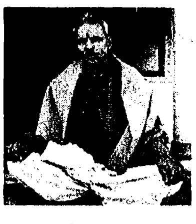

विगत अंक में आपने पढ़ा कि परमपूज्य गुरुदेव ने कार्यकर्त्ताओं से बातचीत के क्रम में कहा कि सूक्ष्मजगत में जैसा कुछ अभी घट रहा है, उसके अनुसार परिस्थितियों में एक बड़ा परिवर्तन संभव है। धर्मतंत्र पर एक बड़ी जिम्मेदारी आने वाली है। उन दिनों भारत के राजनीतिक मंच पर राष्ट्रव्यापी सविनय अवज्ञा आंदोलन चल रहा था। जयप्रकाश नारायण से लेकर मोरार जी देसाई, अटल बिहारी वाजपेयी, चौधरी चरण सिंह और चंद्रशेखर आदि नेता इस कार्य में बढ़-चढ़कर भाग ले रहे थे। इन्हीं परिस्थितियों के मध्य भारत में इमरंजेन्सी लागू कर दी गई थी। इमरजेन्सी के लागू होने पर सर्वत्र व्याप्त हुई रार्जनीतिक परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में लोगों ने पूज्य गुरुदेव द्वारा पहले भेजे गए अखण्ड ज्योति के मुख-पृष्ठ, जिसमें भगवान श्रीकृष्ण हाथ में सुदर्शन लिए खड़े थे—उसके पीछे निहित संदेश को अनुभव किया। आइए पढ़ते हैं इसके आगे का विवरण..........

'हम बदलेंगे—युग बदलेगा' और 'ज्ञानयज्ञ की लाल मशाल—सदा जलेगी-नहीं बुझेगी' जैसे उद्घोष गायत्री परिवार के कार्यक्रमों में हमेशा लगते रहे हैं। इन कार्यक्रमों से परिचित अधिकारियों और राजनेताओं ने आपत्काल लागू होने के बाद सुनाई दे रहे इन नारों पर ज्यादा गौर नहीं किया। पर कुछ शहरों में अधिकारियों ने अतिरिक्त उत्साह दिखाया। वे गायत्री परिवार के कार्यकर्त्ताओं को रोकने-टोकने लगे। उस रोक-टोक की दास्तान से पहले मथुरा की घटनाएँ जान लेना जरूरी होगा। आपत्काल लागू होते ही सभी जिला केंद्रों में सेंसर अधिकारी सक्रिय हो गए थे।

जिला सूचना अधिकारी के रूप में काम कर रहे प्रशासनिक अधिकारियों को यह नाम दिया गया था। उनका काम था अखबारों में छपने वाले समाचारों और आलेखों पर नजर रखना। छपने से पहले उन्हें पढ़ना और कहीं कोई सरकार विरोधी बात दिखाई दे तो उसे रोकना। इसके बावजूद कहीं कोई सामग्री छप जाए तो उस प्रकाशन के खिलाफ कार्रवाई करना। इस कार्रवाई में पत्र-पत्रिका का प्रकाशन, रजिस्ट्रेशन रद्द करने और प्रकाशन रोक देने जैसे निर्णय भी लिए जा सकते थे। सूचना अधिकारियों ने 26 जून के बाद तुरंत ही अपने अधिकारों का खुलकर प्रयोग किया। इस प्रयोग का कारण दायित्व निभाने से ज्यादा अपनी नौकरी बचाना था ।

इस अतिरिक्त सतर्कता का ही परिणाम था कि मथुरा के सूचना अधिकारी रमेशचंद्र शर्मा ने गायत्री तपोभूमि मथुरा के पते पर एक नोटिस भेजा। नोटिस में युग निर्माण योजना के जुलाई 75 अंक में छपे एक प्रसंग की क्लीपिंग नत्थी थी। प्रसंग महात्मा गांधी से संबंधित था। उसके अनुसार कुछ युवक महात्मा गांधी के पास यह शिकायत लेकर आते हैं कि अहिंसा ने हमारी हालत बुरी कर दी है। हमारे यहाँ के उद्दंड लोग हमें चैन से जीने नहीं देते। हम उनका मुकाबला नहीं कर सकते, क्योंकि हमने अहिंसा का व्रत लिया हुआ है और वे बाज नहीं आते; क्योंकि उन्हें कहीं से चुनौती नहीं मिल रही। महात्मा गांधी उन युवकों से कहते हैं कि अहिंसा में तुम्हारी आस्था अधूरी है। अगर आस्था पक्की होती तो तुम लोग यह शिकायत लेकर नहीं आते। उन लोगों का मुकाबला अहिंसा से ही करते रहते। युवकों ने पूछा कि अहिंसा से मुकाबला कैसे किया जा सकता है? वे लोग तो हमें मारने-पीटने लगते हैं। गांधी जी ने कहा कि वे लोग मारने-पीटने लगते हैं तो अहिंसा के हिसाब से बहादुरी यह होती कि तुम उन्हें सहन करते और ईश्वर से प्रार्थना करते कि उन्हें क्षमा करें। लेकिन उनकी ज्यादतियों का विरोध जारी रखते। अहिंसा का असली अर्थ तो यही है। तुम लोग आततायियों के सामने टिके रहने के बजाय भाग आए। यह तो कायरता

है। इस तरह की कायरता से तो हिंसा ही अच्छी है। अहिंसा कायरों के लिए नहीं हो सकती।

आपत्ति का समाधान

पत्रिका में यह प्रसंग संक्षेप में छपा था। सेंसर विभाग ने इसे आपत्तिजनक माना और गायत्री तपोभूमि में एक नोटिस भेज दिया। नोटिस में कहा गया था कि यह सामग्री प्रकाशित करने के लिए पत्रिका का पंजीयन क्यों न रद्द कर दिया जाए? पंडित लीलापत शर्मा ने नोटिस लिया और पढ़ा तो चिंतित हुए। एक क्षण को लगा कि तपोभूमि पर संकट के बादल आने वाले हैं। कार्यालय में जिस जगह वे बैठते थे, वहाँ ऊपर गुरुदेव का एक बड़ा चित्र लगा हुआ था। पंडित जी ने एक बार फिर नोटिस पर निगाहें दौड़ाईं और अपनी गरदन उठाकर ऊपर देखा। पंडित जी को लगा कि गुरुदेव जैसे मुस्करा रहे हैं। मन-ही-मन पंडित जी ने कहा ढाढ़स बँधाने और रास्ता दिखाने के बजाय आप हँस रहे हैं। फिर स्वयं ही अपने आपसे कहा—'हो सकता है इसमें भी कोई भलाई हो।'

पंडित जी यह सब सोच ही रहे थे कि फोन की घंटी बजी। रिसीवर उठाया। शांतिकुंज से फोन था। उधर से संदेश था कि कुछ अप्रत्याशित स्थितियों का सामना करना पड़ सकता है। परेशान मत होना। समाधान अपने आप निकल आएगा। पंडित जी ने बताया कि सेंसर विभाग से नोटिस आया है। महात्मा गांधी वाले प्रसंग को आपत्तिजनक माना है। क्या किया जाए? उधर से शांतिकुंज के वरिष्ठ कार्यकर्त्ता बोल रहे थे। वे गुरुदेव का निर्देश बता रहे थे। उन्होंने कहा—"गुरुदेव की आज्ञा है कि बताई गई तारीख को सेंसर अधिकारी से मिल लो। उन्हें अपनी और अपनी व्यवस्था-प्रक्रिया के बारे में बता दो कि सामग्री का चयन कैसे होता है? पत्रिका कितने दिन पहले तैयार हो जाती है? यह प्रसंग बहुत प्रसिद्ध है और इसमें महात्मा गांधी ने अहिंसा का ही महत्त्व बताया है।"

इस वार्त्तालाप के बाद उधर से फोन रख दिया गया। पंडित जी इसके बाद भी रिसीवर हाथ में पकड़े हुए कुछ सोचने से लगे थे। मन में शायद यही भाव आ रहे थे कि व्यर्थ ही चिंता की। सेंसर विभाग का नोटिस मिला तो विचलित नहीं होना चाहिए था। माना कि कोई व्यग्रता नहीं हुई, पर मन में आई तो सही। गुरुदेव जब स्वयं सँभाल रहे हैं तो हम लोगों को निश्चिंत ही रहना चाहिए। थोड़ा भी विचलित होना, अपने आप को कमजोर करना है। इन भावों में वे पता नहीं कब तक डूबे ही रहते कि अखण्ड ज्योति संस्थान से एक वरिष्ठ कार्यकर्त्ता ने आकर पंडित जी को पुकारा। उस पुकार या प्रणाम को सुनकर पंडित जी जैसे जागे। उन कार्यकर्त्ता से पता चला कि अखण्ड ज्योति के नए अंक में छपे कवर को लेकर भी सेंसर अधिकारियों ने आपत्ति की है। सेंसर का नोटिस आने के बाद वहाँ भी शांतिकुंज से फोन आया और सहज-सामान्य रहने के लिए कहा है।

इस प्रसंग का उल्लेखनीय अंश यह है कि दो दिन बाद पंडित जी और सतीश जी सेंसर कार्यालय गए। उन्होंने अखण्ड ज्योति और युग निर्माण योजना के कुछ पुराने अंक भी साथ रख लिए थे। उन्होंने संस्थान को मिले नोटिस का लिखित उत्तर भी तैयार किया हुआ था। दोनों ने कक्ष में प्रवेश किया ही था कि अधिकारी ने अपनी कुरसी से उठकर उनका अभिवादन किया। पंडित जी और सतीश जी के हाथ उन्हें नमस्कार के लिए उठें, उससे पहले ही सूचना अधिकारी अपनी कुरसी से उठकर उनके पास आए और आदर के साथ अपनी मेज के पास ले गए। उन अधिकारी ने कहा—"आप दोनों को कष्ट करना पड़ा। इसके लिए मैं निजी तौर पर क्षमाप्रार्थी हूँ, पर विभागीय मजबूरी है। आप अन्यथा मत लीजिएगा।"

पंडित जी और सतीश जी ने समवेत कहा—"हमें कोई परेशानी नहीं हुई। आप अपना कर्त्तव्य पूरा कर रहे हैं।" कहते हुए वे दोनों अधिकारी के सामने कुरसियों पर बैठ गए। अधिकारी ने कहा—"सनातन धर्म में मेरी पूरी आस्था है। मैं जानता हूँ कि अखण्ड ज्योति और युग निर्माण योजना से देश का कितना बड़ा हित हो रहा है। आप जो जवाब लिखकर लाए हैं, वह जो भी है, काफी होगा। भविष्य में आपको किसी तरह की कठिनाई नहीं होगी।"

पंडित जी या सतीश जी को कुछ कहने की जरूरत ही नहीं पड़ रही थी। आर०सी०शर्मा के नाम से जाने जा रहे अधिकारी ने अपनी बात जारी रखते हुए कहा—"आप और आपकी पत्रिकाओं के लिए हम लोगों ने अलग तरह की व्यवस्था सोची है। सामान्य पत्र-पत्रिकाओं के लिए तो जरूरी है कि उन्हें छपने के पहले सारी सामग्री दिखाना होगी। सेंसर विभाग उस सामग्री को देखकर पास करेगा, उस पर विभाग की मुहर लगेगी और तब सामग्री प्रकाशित होगी। 'अखण्ड ज्योति' और 'युग निर्माण योजना' के लिए यह व्यवस्था दी जा रही है कि आपकी

पत्रिका टाइप होकर, कंपोज, मेकअप आदि के बाद जब छपने के लिए भेजें तो उसे दिखा लें। उस पर विभाग की मुहर लग जाएगी। कहीं कोई सुधारने जैसी बात हुई तो उसी स्तर पर ठीक कर ली जाएगी। वैसे मैं जानता हूँ कि इसकी नौबत आएगी नहीं।''

नोटिस का जवाब देखे बिना या सफाई में कुछ सुने बिना ही आर०सी० शर्मा ने अपनी व्यवस्था दे दी। पंडित जी और सतीश जी चकित थे कि उन्होंने जिस स्थिति की कल्पना की थी, उससे उलटी और आशातीत रूप से अनुकूल स्थिति बन गई है। सूचना अधिकारी दोनों को स्तब्ध देखकर फिर बोले—''चिंता मत कीजिए। यह व्यवस्था भी थोड़े दिनों के लिए ही है। हालात हमेशा एक जैसे नहीं रहेंगे, महीने-दो-चार महीने में सामान्य होंगे ही।''

इसके बाद अधिकरी ने खुलकर बातें शुरू कीं और वातावरण कुछ ही देर में अनौपचारिक-सा हो गया। आर०सी० शर्मा ने तपोभूमि के प्रति आदर और श्रद्धा का भाव व्यक्त किया और पंडित जी तथा सतीश जी ने उन्हें समय निकालकर तपोभूमि आने का निमंत्रण दिया। ❑

महत्त्वपूर्ण सूचना
वर्ष, 2019 में

शांतिकुंज से प्रकाशित होने वाली पत्रिकाओं का चंदा

1 जनवरी, 2019 से पत्रिकाओं का वार्षिक चंदा निम्नानुसार होगा।

पत्रिका	वार्षिक	आजीवन (20 वर्ष)	विदेश में (वार्षिक)
अखण्ड ज्योति (मराठी)	120/-	2200/-	1800/-
अखण्ड ज्योति (ओडिया)	135/-	2400/-	1500/-
अखण्ड ज्योति (असमिया)	96/-	-	
अखण्ड ज्योति (तमिल)	96/-	-	
अखण्ड ज्योति (मलयालम)	96/-	-	
अखण्ड ज्योति (कन्नड़)	96/-	-	
प्रज्ञा अभियान हिंदी❁ (द्विमासिक परिशिष्ट सहित)	60/-	-	800/-
प्रज्ञा अभियान गुजराती❁ (द्विमासिक परिशिष्ट सहित)	60/-	-	800/-
प्रज्ञा अभियान बंगला (मासिक)	24/-		

❁ प्रज्ञा अभियान हिंदी और गुजराती के संबंध में विशेष ज्ञातव्य :

✳ 1 जनवरी, 2019 से परिशिष्ट के साथ ही ग्राहक बना जा सकेगा, जिसका वार्षिक चंदा 60/- है।

✳ वार्षिक 40/- के चंदे से अकेले पाक्षिक मँगाने की व्यवस्था नहीं होगी।

✳ परिशिष्ट प्रज्ञा अभियान को अधिक उपयोगी और अधिक लोकप्रिय बनाने वाले होंगे।

✳ न्यूनतम 25 प्रज्ञा अभियान रजिस्टर्ड डाक से भेजे जाएँगे, ताकि ग्राहकों तक वे सुनिश्चित रूप से पहुँच सकें।

चुनौतियों को सौभाग्य में बदलते सैनिक

कारगिल का युद्ध देश के इतिहास में अमर हो गया है और साथ ही इसमें शहीद हुए जवान भी अमर हो गए हैं, जिनके बलिदानों की बलिवेदी पर यह संग्राम विजित हुआ, लेकिन इस युद्ध में कुछ ऐसे भी लोग हुए, जिन्होंने देश की रक्षा करते हुए अपने अंग तक गँवा दिए। इनके शरीर के कुछ अंग तो अब नहीं रहे, लेकिन उनके हौसले अब भी बुलंद हैं और इन्हीं हौसलों के सहारे उन्होंने अपने जीवनसमर में फिर से पदार्पण करते हुए अपने को वीर योद्धा प्रमाणित किया है।

युद्ध में गंभीर रूप से घायल हुए जाँबाजों के लिए जीवन में पुनः संघर्ष करना और समाज में अपनी एक नई पहचान बनाना अत्यंत कठिन कार्य होता है, लेकिन जो असली युद्ध लड़े हैं, वे अपनी जिंदगी के समर से भी लड़ने में सक्षम हो जाते हैं और यही बात प्रमाणित की है—भारत के पहले ब्लेडरनर के रूप में विख्यात हुए सेवानिवृत्त मेजर दविंदर पाल सिंह ने।

कारगिल युद्ध के दौरान जब वे 15 जुलाई, 1999 को पाकिस्तानी पोस्ट से मात्र 80 मीटर की दूरी पर थे, तभी एक मोर्टार उनके करीब डेढ़ मीटर पर आकर फटा। इस धमाके में वे बुरी तरह घायल हो गए। उन्हें पहले तो मृत घोषित कर दिया गया, लेकिन ईश्वर की कृपा से वे मृत्यु के द्वार से भी सकुशल लौट आए। उनकी शारीरिक स्थिति ठीक नहीं थी। इस युद्ध में उन्होंने अपना एक पैर गँवा दिया, उनके शरीर पर आज भी 40 जगह बम के शार्पनेल धँसे हुए हैं, उनकी सुनने की क्षमता आंशिक रूप से बाधित है, लेकिन उनकी पसलियाँ टूटने व यकृत रोग जैसी अनेक समस्याओं के बावजूद वे एक मैराथन रनर हैं। 18 हाफ मैराथन दौड़ने के लिए लिम्का बुक ऑफ वर्ल्ड रिकॉर्ड में दविंदर पाल सिंह का नाम दर्ज है। इनका कहना है कि ईश्वर ने मुझे दूसरा जीवन दिया है और मैं इसे पूरी तरह जीना चाहता हूँ। जीवन से हार मान चुके लोगों को यह बताना चाहता हूँ कि अगर कुछ करने के लिए मन में ठान लिया जाए तो मुश्किल कुछ भी नहीं है।

विगत दिनों उन्होंने 'दि चैलेंजिंग वन्स' नाम से एक गैरसरकारी संगठन शुरू किया है, जिसके साथ भारत के करीब 2000 दिव्यांग जुड़ चुके हैं और इनमें से 500 ऐसे लोग हैं, जो विभिन्न प्रतिस्पर्धाओं में भाग लेकर खुद को सक्षम सिद्ध कर चुके हैं। इसके अलावा हर साल ये 'स्वच्छाबिलिटी रन' का आयोजन भारत के विभिन्न शहरों में करते हैं। इसका उद्देश्य स्वच्छ भारत अभियान में अपना योगदान देने के साथ-साथ दिव्यांगों को सामान्य लोगों की तरह ही अधिकार दिलाना और उनके प्रति समाज की सोच को बदलना है।

बास्केटबॉल के शौकीन कैप्टन सत्येंद्र सांगवान के साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ। कारगिल युद्ध के दौरान एक लैंडमाइन पर पैर पड़ने से दि ग्रेनेडियर्स रेजिमेंट के इस जाँबाज सैनिक ने अपना एक पैर गँवा दिया लेकिन खेलों के प्रति उनका जुनून यथावत् बना रहा। जब उन्हें यह पता चला कि उनका दायाँ पैर काटना पड़ा है तो उनके मुख से यही शब्द निकले कि अब मैं बास्केटबॉल कैसे खेलूँगा? भिवानी के मूल निवासी कैप्टन सांगवान का कहना है कि जंग के मैदान में उन्होंने इतना खून-खराबा देखा और इतने लोगों को जान गँवाते हुए देखा कि उन्हें उनके आगे अपना दरद कम लगता है।

कैप्टन सांगवान को कारगिल युद्ध के बाद कृत्रिम पैर के अलावा ओएनजीसी कंपनी के एचआर विभाग में नौकरी मिली। यहाँ गुजरात में पोस्टिंग के दौरान उन्होंने पुनः खेलों की तरफ ध्यान देना शुरू किया। यहाँ पहले उन्होंने जैवलिन थ्रो, रनिंग और बैडमिंटन खेलना शुरू किया। जैवलिन थ्रो में उन्होंने राष्ट्रीय स्तर पर दो गोल्ड और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर एक स्वर्ण व एक रजत पदक जीता। इसके अलावा अंतरराष्ट्रीय स्तर पर आयोजित एक दौड़ में उन्होंने एक रजत पदक और राष्ट्रीय पैरागेम्स में दो रजत पदक जीते। विभिन्न खेलों में उत्तम प्रदर्शन के लिए उन्हें सन् 2009 में राष्ट्रपति द्वारा 'बेस्ट रोल मॉडल इन सोसाइटी' के सम्मान से नवाजा गया।

नेतृत्व क्षमता को बखूबी समझने वाले कर्नल ललित राय कारगिल युद्ध के दौरान मोर्चे पर पहली बटालियन के फर्स्ट कमांडिंग ऑफीसर थे। हजारों फीट की ऊँचाई पर चल रहे युद्ध के दौरान इनके घुटने पर गोली लग गई। नेतृत्व के अभाव में साथी सैनिकों का हौसला न टूटे, इसलिए उन्होंने वहाँ से जाने से इनकार कर दिया और घायल अवस्था में भी दुश्मन का सामना करते रहे। उनके इस जज्बे ने अन्य साथी सैनिकों में जोश का संचार कर दिया और वे पाकिस्तानी चौकी पर एक ही बार में कब्जा करने में कामयाब रहे।

इस जाँबाजी के लिए उन्हें अगस्त, 1999 में 'वीर चक्र' से सम्मानित किया गया। वर्तमान में कर्नल ललित राय पुणे के एक हॉस्पिटैलिटी कंपनी में उच्च पद पर कार्यरत इंस्पिरेशनल व मोटीवेशनल स्पीकर हैं। अनेक कंपनियों के सलाहकार व विभिन्न शिक्षा संस्थानों में 20 हजार से ज्यादा विद्यार्थियों को अपने प्रेरक शब्दों से प्रभावित करने वाले कर्नल राय का कहना है कि आज आधुनिक सुविधाओं के कारण युवाओं में जागरूकता बहुत बढ़ गई है। मैंने पाया है कि आज युवाओं में देशभक्ति की भावना बहुत अधिक है, लेकिन जरूरत उनको सही दिशा देने की है।

खेलों में रुचि रखने वाले कैप्टन शैलेंद्र कश्यप को फौज में आए हुए अभी मात्र ढाई महीने ही हुए थे कि कुपवाड़ा में पोस्टिंग के बाद कैप्टन शैलेंद्र कश्यप की यूनिट मई 1999 में अबोहर में पीस पोस्टिंग के लिए कूच कर गई। काफिला अभी श्रीनगर पहुँचा ही था कि कारगिल में माहौल बिगड़ने की सूचना मिली और सैनिकों की इस टुकड़ी को वहाँ पहुँचने के आदेश मिल गए। जोजिला पास की ओर से द्रास में दाखिल हुए जम्मू एंड कश्मीर रेजिमेंट की इस टुकड़ी पर जिम्मेदारी अधिक थी; क्योंकि इन्हें क्षेत्र के बारे में ज्यादा जानकारी थी। कैप्टन कश्यप के अनुसार, पाकिस्तानियों को जहाँ-जहाँ से खदेड़ा जाता, वे वहाँ कुछ-न-कुछ सामान छोड़ते जा रहे थे। इसे चेक करना जरूरी था कि इसमें कोई कैमिकल वेपन वगैरह न हो।

ऐसी ही एक पाकिस्तानी पोस्ट की चेकिंग के लिए वे आगे बढ़ रहे थे, जिसमें वे बुरी तरह से घायल हो गए और अपना बायाँ पैर गँवा बैठे। उन्हें फिर से अपने नए जीवन में ढलने में लगभग दो साल लग गए, फिर उन्होंने आहिस्ता-आहिस्ता खेल की ओर अपना रुख किया। वे पहले भी राज्यस्तरीय फुटबॉल खिलाड़ी रह चुके थे, इसलिए जल्दी ही रनिंग, टेनिस, बैडमिंटन, स्क्वॉश आदि खेलने लगे। अलग-अलग शहरों में आयोजित दिव्यांगों के लिए हाफ मैराथन में छह बार भाग ले चुके कैप्टन शैलेंद्र कश्यप भारत को एशियन गेम्स में पैरा बैडमिंटन में कांस्य पदक दिला चुके हैं। वर्तमान में ये देहरादून में ओएनजीसी में कार्यरत हैं और अपनी खेल प्रतिभा से स्वयं को सक्षम सिद्ध कर रहे हैं।

ऐसे और न जाने कितने देश के जाँबाज सैनिक हैं, जिन्होंने युद्ध में अंग-भंग हो जाने पर भी अपना हौसला बनाए रखा है और अपने को सिद्ध किया है। इनके जीवन से सबको प्रेरणा लेने की जरूरत है। ❑

घटना उन दिनों की है, जब अब्राहम लिंकन राष्ट्रपति तो नहीं बने थे, परंतु एक अच्छे नेता के रूप में प्रसिद्ध हो चुके थे। एक दिन वे एक सभा में व्याख्यान दे रहे थे। उसी सभा में लिंकन के गाँव का एक किसान भी बैठा था। वह बीच व्याख्यान में मंच पर चढ़ गया और उनके कंधे पर हाथ रखकर बोला—"अरे अब्राहम! तू तो बहुत होशियार हो गया है। तेरा व्याख्यान सुनने के लिए इतने सारे श्रोता भी आए हुए हैं। शाबाश!" उसके इस व्यवहार पर लिंकन को तनिक भी क्रोध नहीं आया। उन्होंने उसको प्रणाम कर मंच पर लगी कुरसी पर बैठाया और उसकी व उसके घर की कुशलता पूछी। इसके पश्चात उन्होंने अपना शेष व्याख्यान दिया। ऐसी विनम्रता ही व्यक्ति को एक महान इनसान बनाती है।

ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार— 115

मोटापे पर योगाभ्यास का प्रभाव

मानवीय विकास एवं प्रगति की कहानी समस्याओं के अस्तित्व एवं विजय की गाथा है। वैज्ञानिक प्रगति से पूर्व जीवन का दायरा सीमित था और आवश्यकताएँ कम थीं, किंतु विज्ञान के उद्‌भव एवं विकास के साथ परिवेश पूरी तरह बदल गया है और समस्याओं का स्वरूप भी अधिक जटिल तथा व्यापक बन गया है। आधुनिक विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी ने जीवन के हर पहलू को प्रभावित किया है।

आज मनुष्य के पास अनेक सुख-सुविधाओं के साधन उपलब्ध हैं, लेकिन वह प्रकृति से दिनोदिन दूर होता जा रहा है। लोगों ने कृत्रिम जीवनपद्धति को अपना लिया है, जिसके परिणामस्वरूप शारीरिक और मानसिक रोगों का प्रकोप तीव्र गति से बढ़ता चला जा रहा है। मानव शरीर नियमों से निर्मित एक जीवित मशीन बन गया है। जिस प्रकार मशीन के अनेक छोटे-बड़े यंत्र होते हैं, ठीक उसी प्रकार मानव शरीर में भी अनेक अंग-प्रत्यंग हैं। वर्तमान समय में मनुष्य का जीवन समस्याओं और तनावों से भरा हुआ है। चिंता और परेशानियाँ उसके मन:क्षेत्र में निरंतर अशांति उत्पन्न करती हैं, जिससे आनंद के स्थान पर उद्वेगों की भरमार हो गई है।

इस मानसिक व आंतरिक विक्षोभ के कारण अनेकानेक शारीरिक बीमारियों की बाढ़-सी आ गई है। मोटापा इनमें से एक है। मोटापा अपने साथ अनेक बीमारियों को लाता है। इससे उत्पन्न शारीरिक तथा मानसिक कष्ट त्रासदायक-दुष्परिणाम उत्पन्न करने वाले हैं। स्थूलरूप से देखने पर मोटापा एक शारीरिक समस्या प्रतीत होती है, किंतु यदि गहराई से विचार किया जाए तो यह विकृत जीवनशैली एवं तनावपूर्ण मानसिकता का परिचायक अधिक है। आज व्यक्ति का खान-पान, आहार-विहार इतना असंयमित है कि वह स्वास्थ्य पर अत्यधिक नकारात्मक प्रभाव डालता है।

तामसिक आहार-विहार के दुष्परिणाम शरीर की चयापचय प्रक्रिया में गतिरोध उत्पन्न करते हैं और व्यक्ति मोटापे का शिकार होने लगता है। अत: इस मोटापे की समस्या से निजात पाने के लिए ऐसी समग्र प्रक्रिया की आवश्यकता है, जो इसके सभी प्रमुख कारणों की तह तक पहुँचकर उनका निदान कर सके।

इस समस्या के समाधान के लिए केवल योग ही ऐसा माध्यम है, जो ना केवल शरीर को स्वस्थ बनाता है अपितु मनुष्य की जीवनशैली व चिंतनशैली को भी सकारात्मक ऊर्जा प्रदान करता है। योग एवं यौगिक क्रियाओं की अनिवार्य शर्तें नियमितता, श्रमशीलता, प्रसन्नता तथा उत्कृष्टता हैं। इन शर्तों को पूरा करे बगैर मात्र व्यायाम करना या औषधि लेना समुचित प्रभाव लाने में अक्षम रहते हैं। ये मात्र शरीर के बाह्य आवरण का उपचार कुछ सीमा तक कर सकते हैं, किंतु योग में गहनता है, विधेयात्मकता है एवं समग्रता है। योग से आत्मानुशासित जीवन जीने तथा अनियमित जीवनचर्या को सुव्यवस्थित करने में मदद मिलती है। योग मात्र शरीर पर ही प्रभाव नहीं डालता, वरन इसकी क्रियाओं व विधियों की पहुँच मानवीय संस्कारों तक है।

योग की इन्हीं क्रियाओं को चयनित करते हुए देव संस्कृति विश्वविद्यालय में मोटापे पर एक शोधकार्य किया गया। इसका शीर्षक है—**'मोटापे पर कतिपय योगाभ्यास के प्रभाव का प्रायोगिक अध्ययन'**। यह कार्य देव संस्कृति विश्वविद्यालय के योग एवं स्वास्थ्य विभाग के अंतर्गत वर्ष 2016 में शोधार्थी सीमा पटेल द्वारा श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ० प्रणव पण्ड्या के विशेष संरक्षण एवं डॉ० कामाख्या कुमार के निर्देशन में पूरा किया गया।

इस प्रयोगात्मक अध्ययन में दिल्ली के बिड़ला मंदिर के पास स्थित स्वाति वर्किंग वुमन हॉस्टल तथा दिल्ली के विभिन्न शैक्षणिक संस्थानों के गर्ल्स व बॉयज हॉस्टल से 15 से 35 वर्ष के 100 प्रयोज्यों (50 पुरुष और 50 महिलाएँ) का चयन कोटा प्रतिचयन विधि द्वारा किया गया। इन प्रयोज्यों को 45 दिनों तक प्रतिदिन सुबह 7 बजे से 7.45 तक 45 मिनट का योगाभ्यास कराया गया।

इस शोधकार्य में निम्नलिखित स्वतंत्र चरों के रूप में यौगिक क्रियाओं में से कुंजल, अग्निसार, शीतली प्राणायाम, भस्त्रिका प्राणायाम एवं नाड़ीशोधन प्राणायाम को लिया गया। परतंत्र चर के रूप में मोटापे पर यौगिक क्रियाओं का प्रभाव देखा गया।

योग मानवता की प्राचीन पूँजी है। मानव द्वारा संगृहीत सबसे बहुमूल्य खजाना है। मनुष्य तीन तत्त्वों से बना है—शरीर, मन और आत्मा। अपने शरीर पर नियंत्रण, मन पर नियंत्रण और अपनी अंतरात्मा की आवाज को पहचानना—इस प्रकार शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक इन तीनों अवस्थाओं का संतुलन ही योग है। योग मानव शरीर को स्वस्थ और निरोगी बनाता है एवं मनुष्य को बाहरी तनाव, शारीरिक विकारों से मुक्ति दिलाता है। योगासनों के नियमित अभ्यास द्वारा शरीर के विभिन्न जोड़ तथा मेरुदंड स्वस्थ, लचीले तथा सक्रिय बनते हैं।

इनके द्वारा ग्रंथियों के मूल स्थान की सूक्ष्म आंतरिक मालिश होती है, जिससे अनेक शारीरिक समस्याएँ दूर होती हैं। शरीर के अंगों तथा अन्य प्रणालियों के बीच स्वास्थ्य संतुलन भी कायम होता है। इसी क्रम में प्राणायाम का महत्त्व भी कम नहीं है। वह हमारे फेफड़ों को शुद्ध कर प्राणवायु की आपूर्ति कराने में सहायता करता है एवं इस तरह से व्यक्ति को आरोग्य तथा स्वास्थ्य प्रदान करता है। इन सारी क्रियाओं का हमारे मस्तिष्क तथा भावनाओं पर भी हितकारी प्रभाव पड़ता है।

शोधार्थी द्वारा प्रयुक्त यौगिक क्रियाओं में से कुंजल क्रिया आमाशय से मुँह तक अन्न नली की सफाई करती है। इसका अभ्यास खाली पेट ही किया जाता है। यह क्रिया पाचन-क्रिया में बहुत सहायक होती है तथा शरीर के कार्य को संतुलित रखती है। अग्निसार का अभिप्राय अंत:धौति क्रिया से है। अग्नि का अर्थ स्पष्ट है। सार का अर्थ होता है—तत्त्व। इस तरह अग्निसार का अर्थ है—जिस क्रिया द्वारा जठराग्नि को तीव्र करके पाचनशक्ति को बढ़ाया जाए। धौति का अर्थ होता है—धोना। इस तरह यह क्रिया शरीर की अशुद्धियों को धोकर बाहर निकालने का काम करती है। इस क्रिया में पेट का प्रसारण व संकुचन किया जाता है, जिससे पेट के सभी अंगों की मालिश होती है और सभी आंतरिक अंग सुव्यवस्थित होते हैं, उनकी कार्यक्षमता बढ़ती है और भोजन पचाने में सहयोग मिलता है।

प्राणायामों में शीतली प्राणायाम को एक महत्त्वपूर्ण क्रिया के रूप में जाना जाता है। शीतली का अर्थ है—शीतल। इसका अर्थ शांत, विरक्त और भावहीन भी होता है। जैसा कि नाम से स्पष्ट है कि यह प्राणायाम पूरे शरीर को शीतल करता है। भस्त्रिका प्राणायाम मन को साफ करता और प्राणिक बाधाओं को हटाता है। इसके अभ्यास से शरीर में विषाक्त पदार्थ की मात्रा कम हो जाती है और त्रिदोष संतुलित हो जाते हैं।

नाड़ियाँ मानव शरीर में ऊर्जा-प्रवाह की सूक्ष्म माध्यम हैं, जो विभिन्न कारणों से बंद हो सकती हैं। नाड़ीशोधन प्राणायाम साँस लेने की एक ऐसी प्रक्रिया है, जो इस ऊर्जा प्रणाली को साफ कर सुचारु रूप से संचालित करने में मदद करती है। इस प्राणायाम के अभ्यास से सारी अशुद्धियाँ दूर हो जाती हैं और उसे शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य में मदद मिलती है। उपरोक्त यौगिक क्रियाओं को कराने के बाद विश्वसनीयता स्तर पर सार्थक परिणाम प्राप्त हुआ। 15 से 35 वर्ष की आयु के व्यक्तियों का मोटापा सार्थक रूप से कम हुआ।

योग सामान्यत: स्वायत्त तंत्रिका तंत्र का नियंत्रण करता है और हाइपोथैलेमस को सक्रिय करता है। हाइपोथैलेमस मस्तिष्क का वह भाग है जो भूख, निद्रा, संवेगों तथा पिट्यूटरी ग्रंथि पर भी नियंत्रण करता है। अत: इसका सीधा संबंध हमारी भूख व वजन से होता है। अग्निसार क्रिया से शरीर के भीतरी अंगों के साथ-साथ बाहरी अंगों पर भी समान रूप से प्रभाव पड़ता है। आंतरिक स्वच्छता से ही बाह्य सौंदर्य चिरस्थायी रखा जा सकता है। कुंजल, अग्निसार प्राणायाम आदि ऐसे प्रयोग हैं, जो शरीर के आंतरिक मल को पूर्णरूपेण बाहर कर देते हैं, जिससे भीतरी सफाई हो जाती है।

प्रस्तुत शोध से यह सिद्ध होता है कि मोटापे पर आसनों का प्रभाव तो पड़ता ही है, साथ ही षट्कर्म भी प्रभावी सिद्ध होता है एवं मोटापे को सार्थक रूप से कम करने में प्राणायाम का भी सकारात्मक प्रभाव होता है। योग वास्तव में समग्र उपचार की एक पद्धति है, जो जीवनशैली को व्यवस्थित करती है। मोटापा अव्यवस्थित जीवनशैली का परिणाम है। यदि व्यक्ति अपनी जीवनशैली में योगाभ्यास को नियमित रूप से शामिल करता है तो उसे मोटापे और मोटापेजनित समस्याओं का सामना नहीं करना पड़ेगा, साथ ही उसमें आत्मविश्वास, आत्मनियंत्रण हेतु स्वचेतना भी विकसित होगी। ☐

क्षमा की क्रोध पर विजय

सूर्यदेव अब अस्त हो चले थे। दिन के अंतिम क्षणों में वे अपनी समस्त किरणों को समेटते हुए आकाश की अनंतता में कहीं विलीन होते चले जा रहे थे। उन पर आश्रित प्रकृति भी अग्रिम प्रहर के आगमन से पूर्व आवश्यक तैयारियों में जुट गई थी। परोक्ष जगत के सूक्ष्म परिवर्तनों की स्थूल परिणतियों को प्रत्यक्ष की भूमि में घटित होते स्पष्ट देखा जा सकता था, जिसमें कि प्रकृति की सूक्ष्म प्रेरणाओं से संचालित प्राणिजगत स्वभाव के अनुरूप नियत कार्यों में संलग्न होने को आतुर दिखाई पड़ रहा था।

प्राकृतिक परिवर्तनों से भरी ये दोनों ही संधिवेलाएँ चाहे वे रात्रि के दिन में मेल की हों या रात्रि में दिन के मेल की—बड़ी ही विलक्षण होती हैं। अपने आगमन पर ये जहाँ परिवर्तनों से जनित विभिन्न प्रकार की हलचलों के लिए उत्तरदायी होती हैं तो वहीं उन हलचलों के मध्य भी ये गहन प्रशांति के राज्य को स्थापित भी करती हैं। आत्मोन्नति की दिशा में लाभप्रद प्रकृति की इस अनुकूलता से साधक व तपस्वीगण भली भाँति परिचित होते हैं एवं यथासमय इस प्राण-प्रवाह से लाभान्वित होने से भी नहीं चूकते।

अध्यात्म जगत की इसी रहस्यमयी सुलभता से परिचित एक तपस्वी संध्या के उन्हीं दुर्लभ क्षणों में आश्रम परिसर के किसी स्थान पर साधना हेतु प्रवृत्त हुए। भिन्न-भिन्न स्वभाव के सैकड़ों की संख्या में उपस्थित आत्मविद्या के उपासकों से भरा यह आश्रम एक बस्ती से कुछ दूर सघन वन के आरंभ में स्थित था। आश्रम का संचालन मुख्य रूप से किसी ऋषि द्वारा होता था, किंतु आज उनकी अनुपस्थिति में इस दायित्व का निर्वहन उनके कुछ चयनित प्रतिनिधियों द्वारा किया जा रहा था।

अपनी स्वयं की व्यस्तता में उलझे प्रतिनिधियों द्वारा आश्रम की संपूर्ण अनुशासनात्मक सुव्यवस्था को सदा कायम रख पाना एक चुनौती के समान था। ऐसी ही एक चुनौती आज उनके सम्मुख इसलिए आ खड़ी हुई थी; क्योंकि आज आश्रम में साधना हेतु प्रवृत्त हुए एक तपस्वी को संध्याकाल में कुछ अराजक तत्त्वों द्वारा उनकी साधना में विघ्न डालने के उद्देश्य से सताया जाने लगा। कुछ समय तक तो वे उनकी उपेक्षा करते रहे, किंतु उनके न हटने पर क्रोध के आवेश में तपस्वी उन पर टूट पड़े व उन्हें खदेड़ते हुए आश्रम परिसर से कुछ दूर निकल गए। परिसर से बाहर सायंकाल में आस-पास की वस्तुस्थिति की अस्पष्टता में असावधानीवश तपस्वी खंभे से जा टकराए व मृत्यु को प्राप्त हुए। मृत्यूपरांत भी तपस्वी का तपोबल नष्ट नहीं हुआ एवं आश्रम से मोह बने रहने के कारण उसी आश्रम के अध्यक्ष के रूप में उन्होंने पुनः जन्म लिया। चंडकौशिक के नाम से प्रसिद्ध उन तपस्वी में तपस्या का गुण तो था, परंतु क्रोध का दुर्गुण इस बार भी नहीं छूटा था।

मध्याह्न का समय था कि वन के निकट बसी बस्ती से खेल-खेल में कुछ ग्वाल-बाल आश्रम में फल-फूल तोड़ने आ घुसे। स्वभाववश चंडकौशिक ने उन्हें देखते ही ललकारा, किंतु उन पर कोई असर न होता देख वे उन्हें मारने दौड़े। बस्ती की राह बच्चों की जानी- पहचानी थी, सो वे तो सुगमतापूर्वक बढ़ निकले, किंतु चंडकौशिक उस इलाके में नए ही थे, जिस कारण राह की दुर्गमता का उन्हें तनिक भी अंदाज न था। क्रोध के आवेश में वे मार्ग में पड़े खुले कुएँ को न देख सके एवं उसमें गिरकर पुनः काल-कवलित हो गए।

चंडकौशिक को पुनः उसी आश्रम के समीप जन्म मिला, परंतु इस बार पापकर्म बढ़ जाने के कारण वे सर्प योनि को प्राप्त हुए। एक विषधर सर्प के रूप में वे निकट के वन में रहने लगे। स्वभाव से हिंसक प्रकृति के होने के कारण उनका बड़ा ही आतंक था। भयवश बस्ती के लोगों ने उधर से आना-जाना बंद कर दिया था। एक बार तीर्थंकर महावीर बस्ती से होते हुए उस वन की ओर निकले। मार्ग से पूर्व ही बस्ती के लोगों ने उन्हें चेताया कि इस मार्ग पर एक विषधर सर्प रहता है, किंतु महावीर ने तब भी उसी मार्ग का चयन किया।

चंडकौशिक ने ज्यों ही भगवान महावीर को देखा तो वह स्वभाववश उन पर आक्रमण करने को उद्यत हुआ। महावीर पर उसके इस कुप्रयास का कोई प्रभाव न पड़ते देख, उसका क्रोध और भी भड़क उठा। क्रोध के आवेश में उसने भगवान महावीर को उनके पैरों में तीक्ष्ण दंश मारा। आशा के विपरीत भगवान महावीर के चरणों से खून के बदले दूध की धारा बह निकली। चंडकौशिक को भान हुआ कि उसने स्वयं भगवान पर प्रहार कर दिया है। ग्लानि के भाव से वह भर उठा और अपना सिर उसने भगवान के चरणों पर रख दिया।

भगवान महावीर ने शांत और मधुर स्वर में उससे कहा—"जरा सोचो-समझो! तुम कौन थे? आज क्या बन बैठे हो?" भोग योनि में भी बोध के अवतरण की यह विलक्षण घटना घट रही थी। महावीर उसे समझाते हुए आगे कहने लगे—"वत्स! आवेशों में प्रतिक्रिया नहीं, वरन सहनशीलता का अवलंबन ही विवेकसम्मत है। आवेश की अवस्था हमें वास्तविकता के बोध से कोसों दूर कर देती है, जिसके परिणामस्वरूप अज्ञानतावश हम दुष्कृत्य कर बैठते हैं। इसलिए यह अत्यावश्यक है कि प्रतिकूलताओं में हम धैर्य व सहनशीलता को कायम रखने का भरसक प्रयत्न करें।"

भगवान महावीर के शिक्षण ने चंडकौशिक को यह एहसास कराया कि विगत कई जन्मों से वह एक ही भूल बार-बार करता चला जा रहा था, जिसका समुचित समाधान आज उसे स्वयं भगवान महावीर की कृपा से प्राप्त हुआ। चंडकौशिक ने अपना शेष जन्म अहिंसक प्रवृत्ति को अपनाते हुए उसी वन में काटा। ग्लानि बोध के जन्म लेने के कारण एवं पूर्वकृत दुष्कर्मों का प्रायश्चित करने के कारण चंडकौशिक को अगला जन्म मनुष्य योनि में मिला। इसी में निष्काम भाव से तपस्या करते हुए चंडकौशिक मोक्ष को प्राप्त हुआ। क्रोध पर विजय का एक ही मार्ग है—क्षमा। ☐

जापान के एक झेन भिक्षु टेटसुगेन को लगा कि धर्मसूत्र अपनी भाषा में भी प्रकाशित होना चाहिए। सूत्र के प्रकाशन—खरच का अनुमान लगाकर वह धन इकट्ठा करने निकला। लोगों ने उदार मन से उसकी मदद की। वह इस काम में दस साल तक लगा रहा और तब जाकर उसके पास ग्रंथ-प्रकाशन के लिए पर्याप्त धन इकट्ठा हो गया। उसी समय देश में बाढ़ आ गई। बाढ़ अपने पीछे अकाल छोड़ गई। टेटसुगेन ने ग्रंथ-प्रकाशन के लिए जो धन इकट्ठा किया था, उसे लोगों की सहायता में खरच कर दिया। स्थितियाँ सामान्य हुईं तो वह फिर से धन-संग्रह करने निकला। कुछ साल और बीत गए। धन इकट्ठा हुआ कि देश में एक महामारी फैल गई। टेटसुगेन ने धन फिर से लोगों की सेवा में खरच कर दिया। इस तरह उसने कई लोगों को मरने से बचाया। ग्रंथ के प्रकाशन के लिए टेटसुगेन ने तीसरी बार धन इकट्ठा करने का निश्चय किया। बीस साल बाद जाकर ग्रंथ प्रकाशित करने की उसकी इच्छा पूरी हो पाई। उसने ग्रंथों के संकलन का पहला संस्करण निकाला, जिसे क्योटो के ओबाकू विहार में आज भी देखा जा सकता है। जापान में आज भी लोग टेटसुगेन को याद करते हुए कहते हैं कि उसने तीन बार सूत्रों के ग्रंथ प्रकाशित करवाए। तीसरा ग्रंथ हमें दिखता है; जबकि पहले दो ग्रंथ जो ज्यादा महत्त्वपूर्ण थे, वे हमें दिखलाई नहीं पड़ते।

प्लास्टिक के कचरे की भयावह होती समस्या

इस बात से सभी परिचित हैं कि प्लास्टिक हम सभी के लिए अत्यंत नुकसानदेह है, सहूलियत की दृष्टि से यह हमारे लिए उपयोगी हो सकता है, लेकिन स्वास्थ्य की दृष्टि से यह हमारे लिए बिलकुल भी उपयोगी नहीं है। वर्तमान में इसका सबसे अधिक प्रयोग पेयजल की बोतलों में, दूध व तेल की पैकिंग में, शीतल पेय पदार्थों की पैकिंग में, दवाओं की पैकिंग आदि में प्लास्टिक की बोतलों के रूप में या प्लास्टिक के पैकेट के रूप में किया जाता है।

भारत के अधिकतर राज्यों में प्लास्टिक कंपनियाँ स्कूली बच्चों के प्रयोग में आने वाली प्लास्टिक की बोतलों में पीवीसी (पाइपों में प्रयोग होने वाला प्लास्टिक) और बीपीए (बिसफेनोल ए नामक रसायन) जैसे रसायनों का प्रयोग करती हैं, जो उनकी सेहत के लिए बहुत ही हानिकारक है। इन बोतलों में पानी या फिर कोल्ड ड्रिंक (शीतल पेय) पीने योग्य न रहकर जहर के समान बन जाते हैं, जिसका सेवन आज न केवल मासूम बच्चे, बल्कि युवा भी अपने दैनंदिन जीवन में कर रहे हैं।

पर्यावरण विशेषज्ञों के अनुसार, गरमी के दिनों में पानी व शीतल पेय हेतु प्लास्टिक की बोतलों का प्रयोग अधिक होता है। जब ये बोतलें कंपनियों से निकलकर दुकानों और गोदामों में जाने के लिए ट्रकों में लोड होती हैं तो उस वक्त बाहर का तापमान अगर 35-40 डिगरी है तो ट्रक के अंदर का तापमान 50-60 डिगरी होता है। इस दौरान विभिन्न रसायनों से बनी प्लास्टिक की बोतलों में रसायन पिघलना आरंभ हो जाता है और यह सारा रसायन पानी या शीतल पेय में मिल जाता है, जिसके फलस्वरूप पानी या शीतल पेय जहरीला हो जाता है, जिसे लोग जरूरत पड़ने पर खरीदकर पीते हैं और आश्वस्त रहते हैं कि वे शुद्ध पानी व शीतल पेय पी रहे हैं।

वर्तमान में खाने के सामान से लेकर पीने के सभी पेयों की पैकिंग में प्लास्टिक का उपयोग हो रहा है। आश्चर्यचकित करने वाली बात यह है कि प्रयोग होने वाली इस प्लास्टिक में 90 फीसदी से ज्यादा प्लास्टिक रिसाइकिल होने लायक ही नहीं है। न जाने क्यों लोगों ने इसे अपने दैनिक जीवन का एक अभिन्न हिस्सा बना लिया है और इसके धीमे जहर से अपने जीवन को भी जहरीला बना रहे हैं।

देखा जाए तो पूरे भारत में हम सभी रोजाना दो करोड़ प्लास्टिक की बोतलें कचरे में फेंकते हैं। इसका प्रमाण है कि आप चाहे कहीं भी घूमने जाओ, हर जगह ये प्लास्टिक की बोतलें मिलेंगी। पर्यावरण विशेषज्ञों के अनुसार, मात्र 8-10 प्रतिशत ही प्लास्टिक की ये बोतलें रिसाइकिल हो सकती हैं। शेष को लैंडफिल्ड साइटों पर फेंकना पड़ता है, जहाँ ये बायोडिग्रेबल न होने के कारण हजारों साल तक यों ही पड़ी रह सकती हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो हमारी आज की एक गलती का परिणाम आने वाली कई पीढ़ियों को भुगतना पड़ सकता है।

कचरे के रूप में प्लास्टिक बोतलों व अन्य सामानों का बहुत बड़ा ढेर कई स्थानों पर देखने को मिल जाता है। जहाँ इसे कचरे के रूप में रखा जाता है, वह भूमि बंजर हो जाती है और किसी भी महत्त्वपूर्ण उपयोग के लिए नहीं रह जाती। सहजता से कल्पना की जा सकती है कि इस तरह से हम अपनी धरती की उर्वरक क्षमता को प्लास्टिक कचरे से नष्ट कर रहे हैं। यदि प्लास्टिक के कचरे का समय रहते निदान न किया गया तो वह दिन दूर नहीं, जब धरती पर जगह-जगह प्लास्टिक के कचरे के पहाड़ खड़े हो जाएँगे और इसके कारण धरती पर जीवन के अस्तित्व पर संकट खड़ा होगा।

केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (सीपीसीबी) की सन् 2015 में आई एक रिपोर्ट के अनुसार, भारत के प्रमुख 60 बड़े नगरों में प्रतिदिन करीब 4059 टन प्लास्टिक कचरा पैदा होता है। इस सूची में दिल्ली, मुंबई, चेन्नई, बेंगलुरू और हैदराबाद जैसे शहर शीर्ष पर हैं। रिपोर्ट में यह कहा गया है कि देश में प्रतिदिन करीब 25,940 टन प्लास्टिक कचरा उत्पन्न होता है और इसमें भी पैकेजिंग उद्योग सबसे अधिक प्लास्टिक कचरे के लिए जिम्मेदार

है। इस प्लास्टिक कचरे में बोतलें, खाने के पैकेट, प्लास्टिक बैग आदि शामिल हैं। एक रिपोर्ट के अनुसार, हमारे समुद्र को प्रदूषित करने वाले शीर्ष पाँच प्रदूषकों में से चार पैकेजिंग उद्योगों से निकलने वाला प्लास्टिक है।

विशेषज्ञों के अनुसार, इससे बचने का सबसे अच्छा विकल्प यही है कि हम थोड़ा अपने पुराने जमाने की ओर लौटें, जब हमारे जीवन में यह प्लास्टिक किसी भी रूप में नहीं आई थी, तब हम पेय व खाद्य पदार्थों को ग्रहण करने व उन्हें ले जाने के लिए स्टील की बोतलों, टिफिन, थरमस, कपड़े की पोटली व बैग आदि का प्रयोग करते थे। यदि हम फिर से स्टील की बोतलों, स्टील के टिफिन, थरमस, सामान ले जाने हेतु कपड़े के बैग आदि का इस्तेमाल प्राथमिकता के साथ करना आरंभ कर दें तो शायद प्लास्टिक के कचरे पर थोड़ा नियंत्रण स्थापित हो सके।

परिवर्तन आसानी से नहीं होता, लेकिन जब कोई परिवर्तन हो जाता है तो उसे बदलने में भी समय लगता है, इसलिए यह जाहिर-सी बात है कि एकदम से लोग प्लास्टिक के सामानों का प्रयोग करना बंद नहीं करेंगे, लेकिन यदि इस हेतु कोई बेहतर विकल्प हुआ तो प्लास्टिक का प्रयोग निश्चित रूप से कम हो सकता है।

सबसे बड़ी दिक्कत यह है कि लोग सहूलियतों के कारण इसकी गिरफ्त में हैं और इन्हीं सहूलियतों के कारण लोगों ने पर्यावरण की यह दुर्दशा कर दी है। आज से 20-25 साल पहले लोग बाजार से सामान लेने के लिए घर से थैले, बरतन इत्यादि चीजें ले जाया करते थे लेकिन आज के वक्त में लोगों ने इन चीजों को अपने साथ ले जाना बंद कर दिया है और फिर बाजार से घर तक सामान लेकर आने में कुछ साधन तो चाहिए ही, इसलिए दुकानदार ही इन प्लास्टिक की थैलियों को अपने साथ रखते हैं, ताकि ले जाने वाले थैले के अभाव में उनकी बिक्री में कोई कमी न आए। यदि दुकानदार ही प्लास्टिक की थैलियों के स्थान पर कपड़े की या इकोफ्रैंडली थैलियों का प्रयोग करें तो भी यह समस्या काफी हद तक नियंत्रित की जा सकती है।

लोगों को यह समझने की जरूरत है कि यह प्लास्टिक उनके जीवन के लिए कितना नुकसानदायक है, जिसे वो अपनी जिंदगी का एक अभिन्न हिस्सा मानने लगे हैं और उसे न छोड़ने के लिए संकल्पित हैं। हमारे समाज में बहुत से लोग ऐसे हैं, जो प्लास्टिक के प्रयोग से होने वाले नुकसान को नहीं जानते हैं, इसलिए इसका प्रयोग करने में भी परहेज नहीं करते। यदि विज्ञापनों के माध्यम से या अन्य तरीकों से समाज में यह जागरूकता फैला दी जाए कि प्लास्टिक से होने वाले नुकसान क्या हैं और इनका प्रयोग क्यों नहीं करना चाहिए तो निश्चित रूप से हम अपने समाज को प्लास्टिक के प्रदूषण से होने वाले हानिकारक प्रभावों से बचा सकते हैं और अभी तक हो चुके प्लास्टिक के प्रदूषण पर भी नियंत्रण ला सकते हैं। ☐

राजा नरसिंह देव गणपति द्वारा कोणार्क के सूर्य मंदिर का निर्माण कराया जा रहा था। भरसक प्रयत्न के बाद भी उसका निर्माणकार्य धीमा चल रहा था। राजा ने चेतावनी दी कि यदि नियत समय में मंदिर पूरा न हुआ तो सभी शिल्पकारों को मृत्युदंड दिया जाएगा। उसी समय एक शिल्पी का 12वर्षीय पुत्र धर्मपद, जो गाँव में रहकर शिल्प विद्या सीख रहा था, पिता से मिलने मंदिरस्थल आया। सभी के भय को जानकर उसने उनसे मंदिर-कार्य को पूरा करने की अनुमति माँगी।

बालक होने के कारण सबने उसका उपहास किया, परंतु उन्हें उसके संकल्प के आगे झुकना पड़ा। धर्मपद ने नियत समय से पहले ही मंदिर का निर्माणकार्य पूरा कर दिया। सभी हर्षित हुए, पर साथ ही भयभीत भी कि यदि राजा को पता चला कि मंदिर शिल्पकारों ने नहीं, बल्कि एक 12 वर्षीय बालक ने पूरा किया है तो उन्हें अवश्य मृत्युदंड मिलेगा। यह जानने के बाद सभी की रक्षा हेतु धर्मपद ने जलसमाधि ले ली। राजा सहित सभी शिल्पी उसका बलिदान देख स्तब्ध रह गए।

युगगीता —222

कर्त्तापन के भाव से परे होता है गुणातीत पुरुष

(श्रीमद्भगवद्गीता के गुणत्रयविभाग योग नामक चतुर्दश अध्याय की बारहवीं किस्त)

[श्रीमद्भगवद्गीता के चतुर्दश अध्याय की ग्यारहवीं किस्त में, इस अध्याय के इक्कीसवें एवं बाईसवें श्लोकों की व्याख्या प्रस्तुत की गई थी। इनमें से पहले अर्थात इक्कीसवें श्लोक में अर्जुन, भगवान श्रीकृष्ण के सम्मुख अपनी जिज्ञासा तीन प्रश्नों के रूप में प्रस्तुत करते हैं। वे पूछते हैं कि त्रिगुणातीत मनुष्य किन लक्षणों से युक्त होता है, उसका आचरण किस प्रकार का होता है और प्रकृति के इन तीन गुणों का अतिक्रमण किस विधि से संभव है? अर्जुन के ये तीन प्रश्न, मानवीय चेतना के तीन भिन्न तलों से उभरे हैं। अनेकों के मन में यह जिज्ञासा होती है कि आत्मज्ञानसंपन्न मनुष्य, जीवनमुक्त महापुरुष, त्रिगुणातीत व्यक्तित्व के बाह्य लक्षण क्या होते हैं। सत्य यह है कि बाह्य लक्षणों से आंतरिक रूपांतरण का पैमाना तय नहीं किया जा सकता है। ऐसा करने से मात्र आडंबरों को बढ़ावा मिलता है, व्यक्तित्व के रूपांतरण की आत्मसाधना को नहीं। त्रिगुणातीत होने पर व्यक्ति बाहर से बदले-न-बदले, पर भीतर से अवश्य बदल जाता है। उसकी आंतरिक संरचना भिन्न हो जाती है, उसके भाव रूपांतरित हो जाते हैं। उसके जीवन की परिस्थितियाँ भले न बदलें, पर उसकी मनःस्थिति निश्चितरूपेण बदल जाती है। उसके जीवन के घटनाक्रम भले न बदलें, पर उन घटनाक्रमों के प्रति उसका दृष्टिकोण अवश्य बदल जाता है। सत्य यह है कि त्रिगुणातीत व्यक्ति की पहचान बाह्य लक्षणों से नहीं, बल्कि आत्मिक परिवर्तन के आधार पर होती है।

अर्जुन के इस प्रश्न के उत्तर में श्रीभगवान इससे अगले अर्थात बाईसवें श्लोक में कहते हैं कि गुणातीत मनुष्य वह होता है, जो प्रकाश, प्रवृत्ति तथा मोह—ये सभी अच्छी तरह से प्रवृत्त हो जाएँ तो उनसे द्वेष नहीं करता और यदि ये सभी निवृत्त हो जाएँ तो उनकी कामना नहीं करता। इसका अभिप्राय मात्र इतना है कि गुणों से पार गया मनुष्य, सतोगुण के कार्यरूप प्रकाश के, रजोगुण के कार्यरूप प्रवृत्ति के तथा तमोगुण के कार्यरूप मोह के प्रवृत्त होने पर न तो उन्हें बुरा समझता है और न उनकी निवृत्ति पर उनकी आकांक्षा करता है। यह निस्पृहता, यह निर्लिप्तता, यह निरासक्ति ही गुणातीत पुरुष की पहचान कही जा सकती है।]

इसके बाद भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं—

उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते।
गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते॥ *23*॥

शब्दविग्रह—उदासीनवत्, आसीनः, गुणैः, यः, न, विचाल्यते, गुणाः, वर्तन्ते, इति, एव, यः, अवतिष्ठति, न, इङ्गते।

शब्दार्थ—जो (**यः**), साक्षी के सदृश (**उदासीनवत्**), स्थित हुआ (**आसीनः**), गुणों के द्वारा (**गुणैः**), विचलित नहीं किया जा सकता (और) (**न, विचाल्यते**), गुण ही (गुणों में) (**गुणाः,एव**), बरतते हैं (**वर्तन्ते**), ऐसा (समझता हुआ) (**इति**), जो (सच्चिदानंदघन परमात्मा में एकीभाव से) (**यः**), स्थिर रहता है (एवं) (**अवतिष्ठति**), उस स्थिति से कभी विचलित नहीं होता (**न, इङ्गते**)।

अर्थात—जो उदासीन की तरह स्थित है और जो गुणों के द्वारा विचलित नहीं किया जा सकता तथा गुण ही गुणों में बरत रहे हैं, इस भाव से जो अपने स्वरूप में ही स्थित रहता है और स्वयं कोई भी चेष्टा नहीं करता। जिसके अंतःकरण में क्रिया का महत्त्व है, ऐसा व्यक्ति ही सोचेगा कि मैं स्वयं ही कर्त्ता हूँ और जो कर्त्ता बनता है

उसे भोक्ता भी बनने के लिए विवश होना पड़ता है। व्यक्ति गुणातीत हो जाता है, वह अनुभव करता है कि क्रिया तो स्वत: हो रही है अर्थात इनको करने वाला 'मैं नहीं हूँ।' जिसे यह तत्त्वज्ञान हो जाता है, वह त्रिगुणातीत महापुरुष केवल परमात्मसत्ता की उपस्थिति को अनुभव करता है और यह अनुभव करता है कि वह चिन्मय सत्ता, इस सृष्टि की संपूर्ण क्रियाओं में उपस्थित होते हुए भी, उनसे लिप्त नहीं है। क्रियाएँ समाप्त होती रहती हैं, पर वह चिन्मय सत्ता ज्यों-की-त्यों रहती है और इसीलिए त्रिगुणातीत महापुरुषों की दृष्टि क्रियाओं पर न रहकर एकमात्र चिन्मय सत्ता पर ही केंद्रित रहती है।

श्रीभगवान ने यहाँ इस तरह की दृष्टि रखने वालों के लिए उदासीन शब्द का प्रयोग किया है। सामान्य भाषा में हम लोग उदासीन व्यक्ति का अर्थ किसी ऐसे व्यक्ति से लेते हैं, जिसका जीवन नैराश्य की, हताशा की प्रतिमूर्ति हो, परंतु यहाँ यह अर्थ कदापि नहीं है। यहाँ उदासीनता का अर्थ उपरामता से है अर्थात गुणातीत पुरुष, साक्षीभाव प्राप्त होने के कारण राग-द्वेष की प्रेरणा से होने वाले कर्मों से ऊपर उठ जाता है।

गुणातीत पुरुष चूँकि तीनों गुणों से और उनके कार्यरूप शरीर, इंद्रियों और अंत:करण एवं समस्त पदार्थों तथा घटनाक्रमों से किसी भी प्रकार का संबंध नहीं रखता, इसलिए वह उनके प्रति उदासीन हो जाता है। ऐसा वही व्यक्ति कर पाने की स्थिति में है, जो साक्षी के सदृश हो गया है और जो उस भाव में स्थित है, उसे गुणों के द्वारा विचलित कर पाना संभव नहीं है। वह इस सत्य को जानते हुए कि गुण ही गुणों में बरत रहे हैं **(गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते।** *गीता-3/28* **)** ऐसा समझते हुए उसी सच्चिदानंदघन परमात्मा में एकीकृत भाव से स्थित रहता है।

शास्त्र इस चिंतन को अनेक स्थान पर दोहराते हैं कि जो व्यक्ति, देह और देही के मध्य के अंतर को सम्यक रूप से जान जाता है, यह जान जाता है कि करने वाला 'मैं नहीं हूँ' वही सत्य अर्थों में गुणातीत हो जाता है। ऐसा व्यक्ति बाह्य स्पर्शों से एवं बाहर घटने वाले घटनाक्रमों से अप्रभावित रहता है अर्थात बाहर के घटनाक्रम जो प्रकृति के गुणों के कारण उभरते हैं, वे उसे विचलित नहीं कर पाते। जिसे प्रकृति के गुण भी विचलित न कर सकें, वह सहजता से ही आत्मानंद का अधिकारी बन जाता है। इसीलिए गीता में अन्य स्थान पर (*5/21*) कहा गया है—

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम्।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते॥

अर्थात—बाह्य स्पर्शों से अनासक्त रहने वाली बुद्धि ही आत्मसुख को प्राप्त करती है।

सतोगुण के अहंकार से इंद्रियों का, तामसिक अहंकार से विषयों का आविर्भाव हुआ है। राजसिक अहंकार दोनों के मध्य संबंध का आधार निर्मित करता है। शुद्ध सात्त्विक अवस्था होने पर इंद्रियाँ प्रशांत हो जाती हैं और घोर तामसिक अवस्था में इंद्रियाँ जड़ता को प्राप्त हो जाती हैं व उन्हें विषयों से संसर्ग कराने के लिए राजसिक कर्म व्यापार की आवश्यकता होती है। जब व्यक्ति त्रिगुणातीत हो जाता है तो फिर गुणों के द्वारा उसको विचलित नहीं किया जा सकता है। वह जानता है कि ये गुण, स्वयं अपने स्वभाव से बरत रहे हैं और वह इनका कर्त्ता नहीं है, इसलिए वह इनके आवागमन से उत्पन्न सभी परिस्थितियों को द्रष्टा या साक्षी भाव से देखता है व उनसे पूर्णतया अप्रभावित या उदासीन रहता है। महाभारत के शांतिपर्व *(174/19)* में कहा गया है—

सुखस्थानन्तरं दु:खं दु:खस्थानन्तरं सुखम्।
सुखदु:खे मनुष्याणां चक्रवत् परिवर्तत:॥

अर्थात—सुख के अंत में दु:ख तथा दु:ख के अंत में सुख आता रहता है। मनुष्यों के लिए ये सुख तथा दु:ख चक्र की तरह आते-जाते रहते हैं। विवेकी मनुष्य, इस सत्य को जान जाता है और स्वयं को इस चक्र के कर्त्ताभाव से मुक्त करके साक्षी भाव पर ला खड़ा करता है। ऐसा व्यक्ति फिर सुख व दु:ख में समभाव रखते हुए एक द्रष्टाभाव के साथ जीवन को व्यतीत करता है। सुख-दु:ख की उत्पत्ति राग-द्वेष के कारण होती है एवं राग-द्वेष की उत्पत्ति, प्रकृति के गुणों से प्रेरित है। जब व्यक्ति गुणों से ही पार व परे चला गया, तब वह राग-द्वेष से रहित होकर सभी के साथ यथोचित व्यवहार करता है।

यह रहस्य जान लेने का है कि जहाँ राग-द्वेष नहीं हैं, वहाँ सुख-दु:ख भी नहीं हो सकते। सुख-दु:ख से युक्त होने के लिए रागरहित होना आवश्यक है। द्वेष का जन्म, राग से ही होता है और जो राग से रहित हो जाए; वह स्वत: ही द्वेष से भी रहित हो जाता है। जिसे कुछ पाने की आकांक्षा न हो, उससे क्या छीना जा सकता है? चीन के प्रसिद्ध फकीर लाओत्से ने अपने एक शिष्य से कहा कि मुझे जीवनपर्यंत कोई हरा न सका। शिष्य को बड़ा आश्चर्य हुआ; क्योंकि लाओत्से शारीरिक रूप से

कृशकाय व्यक्ति थे। उसने आश्चर्यमिश्रित स्वर में लाओत्से से पूछा—"ऐसा कैसे संभव है?" लाओत्से ने उत्तर दिया—"ऐसा इसलिए संभव है; क्योंकि मैंने जिंदगी में कभी किसी पर विजय नहीं प्राप्त करनी चाही। जो जीतना नहीं चाहता, उसे कोई हरा भी नहीं सकता।"

इसी तरह जो व्यक्ति यह जान जाता है कि इस संसार में जो भी कुछ घट रहा है, वह प्रकृति के गुणों के कारण घट रहा है और इसका मुझसे कोई लेना-देना नहीं है—वह व्यक्ति फिर अविचलित एवं निर्लिप्त हो जाता है। जैसे ही उसे यह पता चल जाता है कि यह सब कुछ मेरे चारों ओर घट रहा है, पर मेरे कारण नहीं घट रहा है, जैसे ही व्यक्ति इन गुणों के बरताव से स्वयं को मुक्त कर लेता है, वैसे ही वह निर्गुण में, परमात्मा में स्थित हो जाता है और फिर किसी गुण के द्वारा उसे विचलित नहीं किया जा सकता।

इतना कहने के बाद भगवान श्रीकृष्ण आगे कहते हैं—

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः॥ *24*॥

शब्दविग्रह—समदुःखसुखः, स्वस्थः, समलोष्टाश्मकाञ्चनः, तुल्यप्रियाप्रियः, धीरः, तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः।

शब्दार्थ—जो निरंतर आत्मभाव में स्थित (**स्वस्थः**), दुःख-सुख को समान समझने वाला (**समदुःखसुखः**), मिट्टी-पत्थर और स्वर्ण में समान भाव वाला (**समलोष्टाश्मकाञ्चनः**), ज्ञानी (**धीरः**), प्रिय तथा अप्रिय को एक-सा मानने वाला (और) (**तुल्यप्रियाप्रियः**), अपनी निंदा-स्तुति में भी समान भाव वाला है (**तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः**)।

अर्थात—जो धीर मनुष्य दुःख-सुख में सम तथा अपने स्वरूप में स्थित रहता है, जो मिट्टी के ढेले में, पत्थर में और सोने में सम रहता है, जो प्रिय-अप्रिय में सम रहता है, जो निंदा-स्तुति में सम रहता है, जो मान-अपमान में सम रहता है, जो मित्र-शत्रु के पक्ष में सम रहता है और जो संपूर्ण कर्मों के आरंभ का त्यागी है—वह मनुष्य गुणातीत कहा जाता है। जब मनुष्य त्रिगुणातीत हो जाता है, तब वह निम्न प्रकृति के प्रयासों के प्रति उदासीन हो जाता है। तब उसके गुण उसे बाँध नहीं सकते और वह उनसे मुक्त होकर एक सार्वभौम, शाश्वत आनंद के भाव को अनुभव करता है।

श्रीभगवान कहते हैं कि जो मनुष्य सुख एवं दुःख, दोनों ही अवस्थाओं में स्वस्थ अर्थात अपने 'स्व' या मूल स्वरूप में स्थित रहता है, वह गुणातीत कहलाता है। सामान्य दृष्टि से हमें सुख व दुःख, दो भिन्न भाव दिखाई पड़ते हैं, पर ऐसा है नहीं। ये एक ही अनुभूति के दो पक्ष हैं, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। चाहते तो सभी सुख हैं, पर वह इच्छा पूरी न हो पाने पर दुःख में बदल जाती है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने विनय पत्रिका *(265/2)* में इसी बात को कुछ इस भाव से कहा है—

जल चाहत पावक लहौं, विष होत अमीको।

अर्थात—चाहता तो जल अर्थात शीतलता या सुख हूँ, पर मिलता पावक अर्थात अग्नि या दुःख है। अमृत के विष रूप में बदलने वाला यह विषय परिणाम है।

इसीलिए श्रीभगवान कहते हैं कि गुणातीत व्यक्ति सुख या दुःख की दौड़ में ही नहीं पड़ता, बल्कि दोनों में ही समभाव रखता है; क्योंकि सुख की चाहत वस्तुतः दुःख की जन्मदात्री है। जैसे सुख की चाह मिटा देने से दुःख स्वयं सदा के लिए समाप्त हो जाता है, उसी प्रकार राग के नष्ट होने से द्वेष भी सदा के लिए नष्ट हो जाता है। ये सुख-दुःख, गुणों के विषम भाव के परिणाम हैं व इनसे मुक्त वही हो सकता है, जो गुणातीत होकर समभाव में स्थित हो गया हो। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि जो सुख व दुःख, दोनों को एकसमान भाव से देखते हुए सदा अपने मूल स्वरूप में स्थित रहता है, वह व्यक्ति ही गुणातीत कहलाता है।

भगवान श्रीकृष्ण इसके बाद गुणातीत पुरुष के अन्य लक्षण बताते हैं कि ऐसे व्यक्ति के लिए मिट्टी के ढेले, पत्थर तथा सुवर्ण में भी समभाव रह जाता है। उसे इन सब में कोई अंतर दृष्टिगोचर नहीं होता है। इस संदर्भ में एक प्राचीन पौराणिक कथा है कि महर्षि शरभंग सपत्नीक अपरिग्रह के भाव से रहा करते थे। एक दिन उस राज्य के राजा की सवारी वहाँ से निकली। उनको यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि ऋषि दंपती कुछ न होने पर भी अत्यंत आनंद के साथ निवास कर रहे हैं। उन्होंने अपने महामंत्री से कहा कि वे इन ऋषि दंपती के लिए कुछ मूल्यवान रत्नों की व्यवस्था कर दें, ताकि वे सुखपूर्वक गुजारा कर सकें। महामंत्री ने तुरंत कुछ रत्न ऋषि दंपती को प्रदान किए।

महर्षि शरभंग उन रत्नों को कौतुक के भाव से देखते हुए बोले—"महामंत्री! पत्थरों का हमारे लिए क्या

मूल्य है?" महामंत्री को लगा कि संभवतया ऋषि उन रत्नों के मूल्य से परिचित नहीं हैं। इसलिए वे बोले—"ऋषिवर! ये अत्यंत कीमती जवाहरात हैं, इनको बेचकर आप बहुत सुखपूर्वक अपना गुजारा कर सकते हैं।" यह सुनकर महर्षि शरभंग हँसे और बोले—"क्षुधा की पूर्ति के लिए अन्न मार्ग पर पड़ा मिल जाता है। फलों की व्यवस्था परमात्मा ने निकट के वन में कर दी है। जल, पर्याप्त मात्रा में बहती नदी हम तक पहुँचा ही रही है। किस वासना की पूर्ति के लिए इन रत्नों की आवश्यकता हमें होगी?"

महामंत्री को लगा कि ऋषिवर इस तरह उन रत्नों को न लें तो उन्होंने अनाज के एक दोने के भीतर उन रत्नों को डाल दिया और फिर उस दोने को उनकी पत्नी को देते हुए बोले—"देवी! आप ब्राह्मण दंपती हैं। शास्त्रानुसार यदि कोई दाता आपके घर पर अन्न का निवेदन लेकर आए तो उसे स्वीकारना पड़ता है। ऋषिपत्नी ने मंत्री के इस अनुरोध को स्वीकारते हुए अनाज के दोने को ले लिया। मंत्री को लगा कि संभवतया ऋषिपत्नी को रत्न अच्छे लगे हों, इसलिए उन्होंने इस माध्यम से यह दान ले लिया। यह देखने के लिए कि वे रत्नों का क्या करेंगी, मंत्री उनके पीछे गुप्त रूप से चलने लगे। उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि ऋषिपत्नी एक-एक करके अनाज के दोने में से रत्न निकालकर मार्ग पर फेंकती जा रही हैं और महर्षि शरभंग से कह रही हैं—"न जाने वह मंत्री क्या सोचकर ये रत्न दे गया। जिनकी व्यवस्था परमात्मा कर देते हैं, उनके लिए इन पत्थरों का क्या मोल है?"

गुणातीत पुरुष इसी तरह किसी कामना के वशीभूत नहीं होते। भगवान श्रीकृष्ण इसके आगे भी गुणातीत पुरुष के गुण बताते हुए कहते हैं कि वह प्रिय-अप्रिय, निंदा-स्तुति, मान-अपमान में सम रहता है। जिस व्यक्ति के अंतस् से कर्त्तापन का भाव ही विदा हो गया हो, उसे इस तरह के भाव विचलित ही कैसे कर सकते हैं? इसीलिए ऐसे गुणातीत पुरुष को श्रीभगवान संपूर्ण कर्मों के आरंभ का त्यागी बताते हैं; क्योंकि कार्यों को आरंभ करने का संकल्प कर्त्तापन के भाव से ही जन्म लेता है। जिसमें कर्त्तापन का भाव ही शेष न रह गया हो, वह स्वत: ही परमात्मा का यंत्र बन जाता है और इस तरह सभी कर्मों के आरंभ का त्यागी होता है। गुणातीत पुरुष का व्यक्तित्व एक ऐसी ही अद्भुत शांति व संतुलन की परिभाषा होता है। ❑

शीमक दुष्कर ज्वर से पीड़ित थे। उनके परिवार ने उनके लिए महँगी औषधियों की व्यवस्था का प्रस्ताव रखा, परंतु उन्होंने उसे अस्वीकार कर दिया। कारण पूछने पर वे बोले—"औषधि का कार्य विष के प्रभाव को रोकना है, रोग को नष्ट करने का कार्य प्रकृति स्वयं करती है। इसलिए औषधि नगण्य मात्रा में ही लेनी चाहिए।" उनका उत्तर सुन लोगों को ऐसा लगा कि वे अत्यंत कृपण हैं, इसीलिए उन्होंने महँगी औषधियों को लेने से इनकार कर दिया। कुछ समय बाद उनका ज्वर अपने आप सही हो गया। उन्हीं दिनों आचार्य महीधर ने कठिन परिश्रम से वेदों का भाष्य किया था। आचार्य का मनोभाव यह था कि उनके द्वारा रचित भाष्य घर-घर पहुँचे, परंतु धनाभाव के कारण उनकी यह इच्छा पूर्ण नहीं हो पा रही थी। शीमक ने जब यह समाचार सुना तो वे अपनी संपूर्ण संपदा लेकर आचार्य महीधर के पास पहुँचे और उनसे बोले—"आचार्य! धन के अभाव में संस्कृति का कार्य नहीं रुकना चाहिए। आप मेरी संपूर्ण संपदा ले लें, परंतु इस भाष्य को जन-जन तक पहुँचाएँ।" तब लोगों को यह पता चला कि वे कितने उदारमना थे।

डायरी लेखन को बनाएँ जीवन का अभिन्न अंग

डायरी लेखन आत्म-अभिव्यक्ति की एक नितांत वैयक्तिक विधा है, जिसका शुभारंभ तो स्वयं से होता है, लेकिन इसके अंत की कोई सीमा नहीं। इसका विस्तार अनंत है। दिन के महत्त्वपूर्ण घटनाक्रम, विचार-भावों के उतार-चढ़ाव, विशिष्ट मुलाकातें व स्मरणीय पाठ—इन सबका लेखा-जोखा डायरी लेखन के अंग हैं। आत्म-मूल्यांकन की एक विधा के रूप में डायरी लेखन यदि हमारी आदत में शामिल हो जाए तो इसके अनेकों लाभ हैं और क्रमशः इसके नए-नए आयाम भी प्रकट होने लगते हैं। लेखन की विभिन्न विधाएँ अनायास ही इससे प्रस्फुटित होने लगती हैं।

डायरी लेखन स्व-मूल्यांकन का एक प्रभावी उपकरण है। नित्य डायरी लेखन के साथ हम अपने व्यवहार के साथ विचार-भाव व अंतर्मन की गहराइयों में भी उतरते हैं, जिससे हम क्रमशः अपने व्यक्तित्व की गहरी परतों व इनके स्वरूप से परिचित होते जाते हैं। इसके साथ हमारा जीवनलक्ष्य और स्पष्ट होने लगता है, जिससे हमारे जीवन की गुणवत्ता में बढ़ोत्तरी होती है व जीवन की सार्थकता के बोध के साथ जीवनयात्रा का रोमांच और बढ़ जाता है।

मन:चिकित्सा की एक प्रभावी तकनीक के रूप में डायरी लेखन का महत्त्व उल्लेखनीय है। तनाव, अवसाद के पल यदि जीवन में घनीभूत हो जाएँ तो जीवन प्रत्यक्ष नरक बन जाता है। तनावपूर्ण जीवन की घुटन, बेचैनी एवं भाव-विक्षोभ को हलका करने में डायरी लेखन एक प्रभावी भूमिका निभाता है। डायरी लेखन के माध्यम से अंतर का वैचारिक-भावनात्मक गुबार हलका हो जाता है। आश्चर्य नहीं कि मन:चिकित्सा की एक विधा के रूप में डायरी लेखन का उपयोग आज व्यापक स्तर पर किया जा रहा है।

स्व-प्रेरक एवं मोटीवेशन शक्ति के रूप में डायरी लेखन का महत्त्व बेजोड़ है। डायरी लेखन में हम अपनी विशेषताओं, उपलब्धियों, यादगार पलों, मुलाकातों, साक्षात्कारों का भी हिसाब-किताब रखते हैं। जीवन में अवसाद, हताशा-निराशा व संघर्ष के विकट पलों में डायरी के ये पन्ने एक प्रेरक शक्ति के रूप में काम करते हैं। जीवन के विषम पलों में इन पन्नों का वाचन एक नए उत्साह एवं आशा का संचार करता है। ऐसे में डायरी हमारे जीवन के आत्मीय सहचर की भूमिका में एक अनन्य स्थान रखती है।

लेखन कौशल प्रशिक्षिका के रूप में भी डायरी की विशिष्ट भूमिका रहती है। नित्य डायरी लेखन, लेखन कौशल का विकास करता है। सहज ही लेखन की एक शैली विकसित होती है। शब्दों का सही चयन, विचार-भावों की सही व सटीक अभिव्यक्ति संभव होने लगती है। आश्चर्य नहीं कि नित्य डायरी लेखन की आदत व्यक्ति को एक लेखक बना देती है, जो इस विधा का प्रयोग करके जीवन के विविध क्षेत्रों में रचनात्मक लेखन को अंजाम दे सकता है।

वेब माध्यम के युग में रचनात्मक लेखन के प्लेटफॉर्म के रूप में डायरी का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। अपने अंतर्मन के मौलिक भावों एवं विचारों को अभिव्यक्ति देने के साथ डायरी रचनात्मक लेखन की एक उर्वर भूमि का काम करती है, जिसे विविध रूपों में विस्तार दिया जा सकता है। यात्रा वृतांत, सत्संग संकलन से लेकर संस्मरण लेखन आदि डायरी लेखन के ही विभिन्न रूप विस्तार हैं। इंटरनेट के वर्तमान युग में वेब डायरी के रूप में ब्लॉग की लोकप्रियता सर्वविदित है, जिसे आजकल लोग अभिव्यक्ति के साथ रोजगार का भी साधन बना रहे हैं।

एक आध्यात्मिक अनुभव के रूप में डायरी लेखन का अपना महत्त्व है। यदि अपने विचार, भाव एवं कर्मों के ईमानदार ऑडिट के रूप में डायरी का उपयोग किया जाए तो यह एक आध्यात्मिक अनुभव के रूप में प्रकट होती है। एक ओर जहाँ यह अपने इष्ट-आराध्य से संवाद का माध्यम बनती है तो वहीं अपनी आंतरिक अवस्था की मापक के साथ आत्मिक प्रगति के सूचक के रूप में भी यह काम करती है। सारांश में नित्य डायरी लेखन

आंतरिक परिष्कार, परिमार्जन एवं आत्मविकास का एक प्रभावी माध्यम बन जाता है।

अंततः डायरी एक अमूल्य धरोहर एवं विरासत के रूप में पीढ़ियों के लिए एक उपहार हो सकती है। एक वैज्ञानिक की प्रयोगधर्मिता, एक साधक की तत्परता-निष्ठा, एक विद्यार्थी की जिज्ञासा एवं एक शोधार्थी की शोधदृष्टि के साथ यदि इस सृजनात्मक कार्य में जुटा जाए तो अपने निष्कर्षों के साथ डायरी लेखन एक ऐसी ज्ञानसंपदा देने में सक्षम है, जिसे मूल्यवान कहा जा सके। एक सृजनसाधक की मौलिक सृजनसृष्टि के रूप में यह एक अनमोल उपहार, धरोहर हो सकती है। साथ ही पीढ़ियों के लिए मार्गदर्शक, प्रेरक एवं दिशाबोधक भी हो सकती है।

डायरी लेखन के इतने लाभों को देखते व समझते हुए क्यों न हम आज व अभी से इस महत्त्वपूर्ण विधा को अपने जीवन का अंग बनाने में जुट जाएँ। शाम या रात्रि के किन्हीं एकांतिक पलों में किसी शांत स्थल पर बैठकर हम अपनी डायरी व पेन लेकर दिन भर के महत्त्वपूर्ण घटनाक्रमों, आंतरिक भाव-विचारों के उतार-चढ़ाव, सार्थक उपलब्धियों, यादगार सबक, मुलाकात आदि को निहारते हुए इनकी सारगर्भित अभिव्यक्ति के साथ इसका शुभारंभ कर सकते हैं। ❑

◆◆◆

महर्षि दुर्वासा तप करने बैठे तो इंद्र को चिंता होने लगी कि कहीं उनके तप से अर्जित पुण्य के कारण स्वर्ग का सिंहासन उसके हाथ से न निकल जाए। महर्षि की तप-साधना में विघ्न डालने के लिए उसने स्वर्ग की अप्सरा और कला की देवी वपु को महर्षि के आश्रम भेजा। वपु के आने से सारे अरण्य में गीत-संगीत की लहरें गूँजने लगीं। वपु महर्षि दुर्वासा की कुटी के पास पहुँची। उसके संगीत के कारण महर्षि का ध्यान भंग हुआ। उन्होंने योगदृष्टि से देखा तो सत्य समझते देर न लगी। वे जान गए कि वह अप्सरा उन्हें लुभाने व पथभ्रष्ट करने आई है। तप को वासना परास्त करे, यह कल्पना उन्हें बुरी लगी। क्षोभवश उन्हें क्रोध हो आया और उनकी आँखें लाल हो उठीं।

कुटिया से बाहर निकलकर उस रूपगर्विता की थिरकन को एक क्षण के लिए महर्षि ने देखा और फिर बोले—"अभागी! तुझे जो सौंदर्य और संगीत का उपहार मिला था, उससे तू विश्व-वसुधा में भक्ति-भावना जाग्रत कर सकती थी, सरसता को अमृत की दिशा में मोड़ सकती थी, परंतु तू उलटा ही करने को उद्यत हो गई। जा! अब अपने कर्मों का फल भोग। तू पक्षी की योनि में मारी-मारी फिरेगी। तेरे चारों पुत्र अपंग ही बने रहेंगे।" महर्षि का वचन मिथ्या कैसे जाता? वपु एक साधारण-सी चिड़िया में बदल गई। उसके पुत्र अपंग पैदा हुए। रूपगर्विता अप्सरा के पास अब पश्चात्ताप ही शेष था। ऐसा प्रतीत होता है कि आज भी कला की देवी वपु पथभ्रष्ट हो गई है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष जैसे चार पुत्र भी कला के गर्भ से ही उत्पन्न होते हैं, परंतु वासना, जीवनलक्ष्य बन जाने से वे भी अपंग नजर आते हैं। ऐसे में कला को तप के सहारे की आवश्यकता है, ताकि वह वासना का उन्माद जगाने के स्थान पर समाज में संवेदना के जागरण का कार्य कर सके।

और कोई हो न हो, पर मैं तुम्हारा हूँ

वर्षों पहले गोदावरी नदी के किनारे एक बहुत बड़ा बरगद का वृक्ष था। पर आज वहाँ एक नहीं सैकड़ों बरगद के वृक्ष खड़े थे। पर यह संभव हुआ कैसे? एक वृक्ष से ही इतने सारे वृक्ष? इसी वृक्ष पर ढेर सारे पक्षियों का रैनबसेरा था। उसकी डालियों में झूलकर वे बड़े होते, उसके फलों को चख-चखकर दूर दूसरे वनों तक भी अपने साथियों को उसके फल चखाते, कुछ खाते और कुछ फेंक देते, और इसी क्रम में उन फलों के बीज जगह-जगह उग आते। हवा के झोंके पाकर बरगद के फल गिरते, सूख जाते और उनके बीज बारिश का जल और गोदावरी का पानी पीकर जल्दी ही उग आते और जल्दी ही वृक्ष बनकर खड़े हो जाते।

परिणामतः आज वहाँ बरगद के वृक्षों का विशाल घना जंगल-सा खड़ा हो गया था। वृक्षों की डालियों पर लटकते चमगादड़, रात के सन्नाटे में खड़खड़ाते पत्तों की आवाज सुन वहाँ से गुजरते हुए हर किसी का मन भय से काँप उठता था। उस बीहड़ वन में फुफकारते काले-काले नागों के कारण रात क्या, दिन भी बहुत ही बड़े भयावह व डरावने लगते। जो भी वहाँ से गुजरते, उनकी चीखें निकल आतीं और कई तो वहीं काल-कवलित हो जाते।

यदि हमारे विचार शुभ न हों, तो हमारे कर्म भी शुभ क्यों और कैसे होंगे? फिर हमारे जीवन में भी सुख-शांति क्यों और कैसे होगी? परमपूज्य गुरुदेव पं० श्रीराम शर्मा आचार्य जी ने ठीक ही कहा है कि मनुष्य जैसा सोचता है, वह वैसा ही करता है और फिर वह वैसा ही बन जाता है। हमारे अशुभ व बुरे कर्मों के कारण हमारा जीवन भी एक घने, अँधेरे, भयावह बीहड़ वन की तरह ही है, जिसमें हम हमेशा भय व डर के साये में जीते हैं, कौन जाने हमारे अशुभ कर्मों से उत्पन्न कोई काला नाग कब आकर हमें डस ले। अशुभ कर्मों के बीहड़ वन के इस सघन अँधेरे व सन्नाटे में मन हर पल विचलित व व्यथित ही रहता है। काम, क्रोध, लोभ व मोह का काला साया हर पल हम पर मँडराता ही रहता है और फिर हमें लगता है यह संसार-सागर कितना भयानक है। इसमें बड़े-बड़े दुःखों की भीषण लहरें उठ रही हैं, विविध मोह की तरंगों से यह उछल रहा है।

तब लगता है कि हम परमात्मा को पुकार कर कह सकें—हे भगवन्! मैं अपने दोष से इस बीहड़ वन व भयावह सागर में पड़ा हूँ। मेरे ही द्वारा किए गए बुरे कर्मों के काले-काले बादल गरज रहे हैं और दुःखों की मूसलाधार वृष्टि कर रहे हैं। पापों के संचय की भयानक बिजली चमक रही है। मोह के अँधेरे में मैं अंधा हो गया हूँ। मुझको अब कुछ भी नहीं सूझता, कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। क्या करूँ? किधर जाऊँ? कोई मार्ग भी नहीं दीख रहा। यह संसार मुझे भयावह जंगल की तरह दीखता है। यह भाँति-भाँति के असंख्य दुःखरूपी वृक्षों से भरा है, मोहमय सिंह-बाघों से परिपूर्ण है। दावानल धधक रहा है। मेरा चित्त इसमें बुरी तरह जल रहा है। यह बहुत पुराना वृक्ष असंख्य दुःखरूपी शाखाओं से भरा हुआ है और यह बीहड़ वन उत्तरोत्तर और सघनतम, भयावह और विशालतम ही होता जा रहा है। कर्म संस्कारों के बीज रह-रहकर गिर रहे हैं, अंकुरित हो रहे हैं और यह वन विशाल और विशालतम होता जा रहा है, इसमें अँधेरा बढ़ता जा रहा है, हर कोने से चीखने की आवाजें आ रही हैं। कर्म संस्कार ही इन सभी दुःखरूपी वृक्षों के बीज हैं, माया ही इनकी जड़ है, सगे-संबंधी, धन, भोग के प्रति घोर आसक्ति ही इनके पत्ते हैं। मैं तो इन वृक्षों पर चढ़कर मानो एक अँधेरे कुएँ में गिर पड़ा हूँ।

इस बीहड़ वन के गहन अँधेरे में साँपों की भयावह फुफकार के बीच अकेला ही पड़ा हूँ। दुःखों की भयानक आग से मैं जल रहा हूँ और घोर शोक में मैं डूबा हूँ। अब मैं क्या करूँ? दुःखों के इस बीहड़ वन से बाहर कैसे निकलूँ? क्या ऐसा कोई मार्ग भी है? कोई उपाय भी है? हाँ है, और अवश्य है, पर उपाय एक ही है—सच्चे मन से ईश्वर की शरणागति, अपने आराध्य की शरणागति, गुरु की शरणागति! ईश्वर बड़े दयालु हैं। वे करुणा के सागर हैं। वे भक्तवत्सल हैं, अपनी शरण में आए हुए को

वे कभी ठुकराते नहीं, वे तो बड़े-बड़े असुरों, दानवों को भी अपनी शरण में लेने में नहीं हिचकिचाते, फिर भला वे हमें क्यों और कैसे ठुकरा सकेंगे? बस, सच्चे हृदय से भगवान से प्रार्थना की आवश्यकता है।

हे प्रभु! अब मैं आपकी शरण में आया हूँ। मेरे स्वामी! यह संसाररूपी गहरी खाई बड़े भारी अँधेरे से छाई है। मैं इसमें न जाने कितने जन्मों से पड़ा हूँ। मुझ दीन पर अब आप कृपा कीजिए। अब मैं इस संसार से विरक्त होकर आपकी शरण में आया हूँ। हे प्रभो! सुना है अपनी शरण में आए हुए को आप कभी ठुकराते नहीं। हे प्रकाश रूप! पापनाशक प्रभु! आप हमारी बुद्धि को प्रकाशित करें, जिससे हम हमेशा सचाई के मार्ग पर चलते रहें व मानव जीवन के चरम लक्ष्य को प्राप्त कर सकें। और सच मानिए जब अपने जीवन की दशा व दिशा बदलने हेतु ऐसी आकुल प्रार्थना, करुण पुकार उठती है, तब प्रभु निश्चित ही किसी-न-किसी रूप में, वेश में हमारा हाथ थामने आ पहुँचते हैं। परम वंदनीया माताजी प्रस्तुत गीत में भक्तवत्सल, शरणागतवत्सल भगवान के उसी आश्वासन को अभिव्यक्त कर रही हैं—

तुम न घबराओ न आँसू ही बहाओ अब,
और कोई हो-न-हो, पर मैं तुम्हारा हूँ।
मैं खुशी के गीत गा-गाकर सुनाऊँगा, गा-गाकर सुनाऊँगा॥
तुम न घबराओ न आँसू ही बहाओ अब॥
मानता हूँ ठोकरें तुमने सदा खाईं,
जिंदगी के दाँव में हारें सदा पाईं।
बिजलियाँ दुःख की निराशा की सदा टूटीं,
मन गगन पर वेदना की बदलियाँ छाईं॥
पोंछ दूँगा मैं तुम्हारे अश्रु गीतों से,
तुम सरीखे बेसहारों का सहारा हूँ।
मैं तुम्हारे घाव धो, मलहम लगाऊँगा॥
मैं विजय के गीत गा-गाकर सुनाऊँगा, गा-गाकर सुनाऊँगा॥
खा गई इन्सानियत को भूख यह भूखी,
स्नेह-ममता को गई पी, प्यास यह सूखी।
जानवर भी पेट का साधन जुटाते हैं,
जिंदगी का हक नहीं हैं, रोटियाँ रूखी॥
और कुछ माँगो, हँसी माँगो खुशी माँगो,
खो गए हो दे रहा तुमको इशारा हूँ।
आज जीने की कला तुमको सिखाऊँगा॥
जिंदगी के गीत गा-गाकर सुनाऊँगा॥
तुम न घबराओ न आँसू ही बहाओ अब,
और कोई हो-न-हो पर मैं तुम्हारा हूँ।
मैं खुशी के गीत गा-गाकर सुनाऊँगा, गा-गाकर सुनाऊँगा॥

❑

साबरमती आश्रम में एक दिन महात्मा गांधी ने यह योजना बनाई कि सबके जूठे बरतन बारी-बारी से कुछ लोग मिलकर माँजा करें। इससे आश्रमवासियों में प्रेमभाव बढ़ेगा तथा एकदूसरे के बरतन माँजने में जो संकोच होता है, वह भी दूर हो जाएगा। इस कार्य का महत्त्व उन्होंने एक आश्रमवासी को बताया तो उसके गले यह बात न उतरी। वह कहने लगा—"सबके जूठे बरतन माँजने से अव्यवस्था होने का भय है।"

गांधी जी ने कहा—"अव्यवस्था का निराकरण कर, व्यवस्था लाना हमारा काम है। सबसे पहले मेरी और बा की बारी है।" इसके तुरंत बाद गांधी जी और बा बरतन माँजने में लग गए। अन्य आश्रमवासियों पर इसका अच्छा प्रभाव पड़ा और वे भी ऐसा करने में साथ जुट गए। तब गांधी जी ने कहा—"इस कार्य को छोटा समझकर लोग करने से कतराते थे। कोई कार्य छोटा या बड़ा नहीं होता, छोटा तो हमारा दृष्टिकोण होता है। स्वयं करने से लोगों का दृष्टिकोण भी बदल जाएगा।"

परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी – 5

अध्यात्म का वास्तविक स्वरूप

(अंतिम किस्त)

विगत अंक में आपने पढ़ा कि परमपूज्य गुरुदेव अपने इस महत्त्वपूर्ण उद्बोधन में अध्यात्म के वास्तविक स्वरूप की व्याख्या जनसामान्य के लिए कर रहे हैं। एक बड़ी भ्रांति लोगों के मन में यह है कि वे बाहरी कर्मकांड को ही अध्यात्म समझ बैठते हैं और उसके पीछे की शिक्षाओं को भूल जाते हैं। इन्हीं कुप्रथाओं पर प्रहार करते हुए पूज्य गुरुदेव कहते हैं कि देवपूजन का अर्थ मात्र पूजन करने से नहीं, बल्कि अपने चिंतन तथा भावनाओं में देवत्व का तथा उसके गुणों का अवतरण करने से है। इसके उपरांत वे उपासना का अर्थ समझाते हुए कहते हैं कि उपासना का सच्चा अर्थ ईश्वरीय गुणों से जुड़ जाने से तथा उनको अपने व्यक्तित्व में उतारने से है। सच्ची भक्ति का अर्थ भावुक होना नहीं, बल्कि दैवीय उद्देश्य के लिए स्वयं को बेशर्त समर्पित कर देने से है। यदि ये गुण हमारे जीवन में नहीं उतर पाए तो बाहरी कर्मकांड मात्र एक प्रक्रिया बनकर रह जाता है। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को........

पहले बोओ, फिर पाओ

मित्रो! संसार में जितने भी महामानव हुए हैं, जिनका स्वर्णिम इतिहास है, उन्होंने पहला काम यह किया है कि अपनी जो संपदाएँ मिली हुई थीं, उनको बोया था। किसके खेत में? देवत्व के खेत में। आप तो कंजूस के तरीके से, कृपण के तरीके से, चालाक के तरीके से, लोभी के तरीके से, स्वार्थी के तरीके से अपनी सब चीजों को दबाए बैठे हैं। उसमें से कुछ खरच करना नहीं चाहते। किसी को अनुदान देना नहीं चाहते और बदले में न जाने क्या-से-क्या चाहते हैं? ऐसा नहीं हो सकता। पहले बोइए, फिर पाइए।

मित्रो! देवत्व के खेत में क्या बोना पड़ेगा? एक तो बोना पड़ेगा—जल। जल से क्या मतलब है? जल से मतलब है बेटे! —श्रम। श्रम से मतलब है—पसीना। आप पसीना बहाइए। पसीने से क्या मतलब होता है? इसका मतलब होता है कि मेहनत कीजिए, समय लगाइए। आप अपना समय और श्रम उन-उन कामों के लिए लगाइए जो कि देवत्व की भूमिका अदा करने के लिए आवश्यक हैं। आप अपना समय केवल स्वार्थ के लिए सीमित मत रखिए, पेट के लिए सीमित मत रखिए। औलाद के लिए सीमित मत रखिए। आपका श्रम लोक-मंगल के लिए भी लगाया जाना चाहिए। आपका श्रम परमार्थ प्रयोजनों में भी संलग्न होना चाहिए। जिसके लिए आप बार-बार यह कहते रहते हैं कि हमें तो फुरसत नहीं मिलती। फुरसत उस काम के लिए नहीं मिलती, जिसको आदमी बेकार समझता है, उपेक्षित समझता है। जिस कार्य को आदमी आवश्यक समझता है, उस काम के लिए हर तरह से समय निकलता है और करना शुरू कर देता है। आपकी उपेक्षा यह बताती है कि आपको लोक-मंगल के लिए फुरसत नहीं मिलती, सेवाकार्यों के लिए और भगवान के श्रेष्ठ काम के लिए फुरसत नहीं मिलती। आप उपेक्षा में बेकार समय बिताते हैं। आपको बहाना मिल जाता है कि फुरसत नहीं मिलती।

समय व श्रम लगे लोक-मंगल में

इसलिए मित्रो! आपको क्या करना चाहिए? अपना परिश्रम और अपना समय श्रेष्ठ कार्यों के लिए, मानवीय

आदर्शों के लिए, इस दुनिया को सुंदर और सुसज्जित बनाने के लिए लगाना चाहिए। पसीना बहाने का यही अर्थ है। भगवान को हम स्नान कराते हैं—'**स्नानं समर्पयामि**।' किससे स्नान करा रहे हैं? एक चमची—जल से। अरे भाई! पहले तो तू स्वयं एक चमची जल से नहा करके आ जरा, तब भगवान जी को स्नान कराना। अरे साहब! एक चमची से भगवान जी तो नहा भी लेते हैं और '**आचमनं समर्पयामि**'—बेटे, तेरे मुँह पर जम रही है धूल, ले एक चमची जल से अपना मुँह धोकर तो दिखा?

महाराज जी! इतने पानी से तो मुँह नहीं धुलेगा, तो कितने से धुलेगा? महाराज जी! कम-से-कम एक लोटा तो होना ही चाहिए मुँह धोने के लिए और भगवान जी का मुँह इतना छोटा है कि एक चम्मच जल से काम चल जाएगा? एक चम्मच में आचमन करा देगा? एक चम्मच में—'**पाद्यं समर्पयामि**'—पाद्य धो देगा? एक चम्मच में स्नान करा देगा और एक चम्मच में सब काम करा देगा? ऐसा नहीं हो सकता। बेटे! यही पसीने की बूँदों से ताल्लुक है और अपने श्रम को, अपने स्वभाव को नम्र, सरल, शीतल बनाने से ताल्लुक है। अगर आपने यह प्रकाश पाया हो, दिशाधारा पाई हो, तो आपके पंचोपचार का पहला चरण सही है। देवपूजन का पहला चरण सही है।

मित्रो! दूसरावाला चरण है—'**अक्षतान् समर्पयामि**।' अक्षत सौंपिए। अक्षत क्या है? अक्षत बेटे, चावल है और क्या? कितना सौंपूँ? अच्छा यह बता कि दोपहर की रोटी खाता है, तो कितने चावल में तेरा पेट भर जाता है? महाराज जी! मैं तो जब एक बार पत्नी परोसती है, तब ले लेता हूँ और दूसरी बार फिर ले लेता हूँ। अच्छा, तो कितने चावल ले लेता है? महाराज जी! तीन छटाँक चावल तो मैं दोपहर को खा जाता हूँ और शाम को? तीन छटाँक शाम को भी खा जाता हूँ। तीन और तीन—छह छटाँक खा जाता है। कब? जब संग में दाल भी लेता है, शाक भी लेता है और पूरी-रोटी भी लेता है। अगर मैं तुझे अकेला चावल ही खिलाऊँ तो? सारे दिन में तो केवल चावल डेढ़पाव से आधा किलो खा सकता हूँ, अगर आप दूसरी चीज दें तब। बेटे! भगवान जी तुझसे कितने बड़े हैं? महाराज जी! बहुत बड़े हैं। बड़े हैं तो उनको रोजाना कितना चावल खिलाया करेगा? कम-से-कम पाँच किलो चावल भगवान जी को रोज खिलाया कर। गणेश जी को पूजता है, तो कम-से-कम पाँच किलो लड्डू खिला। उनका कितना बड़ा पेट है। पाँच किलो कितने दाम का आएगा? इस समय यह ढाई-तीन रुपये किलो है। 5 × 2.5 = 12.50 रुपये का चावल रोज गणेश जी को खिला। महाराज जी! ऐसा तो नहीं करूँगा।

भगवान के लिए लगाएँ कमाई

मित्रो! '**अक्षतान् समर्पयामि**', '**नैवेद्यं निवेदयामि**।' इसका क्या मतलब है? 'अक्षत' का अर्थ है कि हम जो अनाज कमाते हैं। पहले सब लोग अनाज कमाते थे। आज तो रुपये भी मिलते हैं। हमारी कमाई का एक बड़ा हिस्सा भगवान के लिए खरच होना चाहिए। हमारा सारा-का-सारा धन, हमारे स्वयं के स्वार्थ में ही नहीं खरच हो जाना चाहिए। अध्यात्म की भाषा में यह चोरी है। आप अपना कमाएँ, अपना खाएँ। कोई पुलिस आपको पकड़ नहीं सकती। कोई इन्कमटैक्स वाला पकड़ने नहीं आ सकता, लेकिन आध्यात्मिक दृष्टि से गिरफ्तार किया जाएगा; क्योंकि आप अपने लिए कमाते हैं और अपने लिए खाते हैं—'**केवलाघो भवति केवलादी**।' अर्थात जो अपने लिए कमाए और अपने लिए खाए, वह चोर है। इसलिए आपको अपनी जिंदगी को और अपनी संपत्तियों को साझेदारी की दुकान मानना चाहिए।

यह भगवान के साथ साझेदारी की दुकान है। इसमें से भगवान का हिस्सा भी हमको देकर के चलना चाहिए। हमारी कमाई का एक अंश भगवान के लिए भी खरच होना चाहिए। यह इस तरीके से खरच होना चाहिए, जैसे कि ईश्वरचंद्र विद्यासागर करते थे। ईश्वरचंद्र विद्यासागर को 500 रुपये वेतन मिलता था। उन्होंने 50 रुपये अपनी गृहस्थी के लिए सुरक्षित रखा और कहा कि हम गरीबी में जिएँगे और 50 रुपये में काम चलाएँगे। 450 रुपये महीने उन्होंने विद्यार्थियों की शिक्षा के लिए सुरक्षित रखे और सारे बंगाल के, कलकत्ते के लोगों से कहा कि जिस विद्यार्थी के पास फीस न हो, वह यहाँ से पैसे लेकर के जाए। जिस विद्यार्थी के पास मिट्टी का तेल न हो, वह हमारे यहाँ से लेकर के जाए।

मित्रो! ईश्वरचंद्र विद्यासागर इतनी गरीबी में पले थे कि वे सड़क के किनारे की लाइट में बैठकर पढ़ा करते थे। मिट्टी के तेल का पैसा नहीं था। वे समझते थे कि गरीबी किसे कहते हैं? कंगाली किसे कहते हैं? इसलिए गरीबी और कंगाली में जी रहे बच्चों की सहायता के लिए उन्होंने निश्चय किया कि हम 50 रुपये में अपना

गुजारा कर सकते हैं और 450 रुपये विद्यार्थियों के लिए लगा सकते हैं। आप तो अपनी कमाई का 500 रुपया भी खा जाते हैं और चोरी-चालाकी का भी खा जाते हैं। फिर बेटे! बात कैसे बनेगी? आपको अपनी कमाई का एक हिस्सा भगवान के काम में लगाना ही चाहिए। नहीं साहब! हम तो नहीं लगा सकते, तो फिर भगवान की भक्ति नहीं हो सकती। आपकी भगवान की भक्ति केवल खिलौना है, विडंबना है, आडंबर है और ढोंग है। इसलिए मित्रो! क्या करना पड़ेगा? '**अक्षतान् समर्पयामि**'—अर्थात अपनी कमाई का एक अंश भगवान के काम में लगाइए।

मित्रो! श्रम के बारे में अभी-अभी बता चुका हूँ और धन के बारे में अभी बता रहा था। आपके पास पाँच चीजें हैं और पंचोपचार के माध्यम से आप इन पाँचों को कोशिश कीजिए कि लोक-मंगल के लिए, श्रेष्ठता के लिए, आदर्शवादिता के लिए इनमें से बड़े-से-बड़ा अंशदान करना है। यह पंचोपचार अंशदान की शिक्षा है। पंचोपचार खिलौना नहीं है, ढोंग नहीं है, चालाकी नहीं है, हाथों की हेरा-फेरी नहीं है। इसके पीछे यही प्रेरणा है कि आपके पास जो कुछ भी है, उसका बड़े-से-बड़ा अंश श्रेष्ठ कामों के लिए लगाएँ।

दीपक का अर्थ है ज्ञान

मित्रो! फूल क्या है? और चंदन क्या है? चंदन, फूल और दीपक—ये तीन चीजें अभी और बाकी रह जाती हैं। चंदन का क्या अर्थ होता है और फूल का क्या अर्थ होता है? इसको आपको जानना चाहिए। दीपक का अर्थ है—ज्ञान। आपकी जो समझ है, जो बुद्धि है। जैसे हमारे मस्तिष्क में ज्ञान रहता है। मस्तिष्क में दीपक के ऊपर ज्ञान की बत्ती, ज्योति जलती रहती है। प्यार से भरा हुआ हृदय और पात्रता से भरा हुआ कलेवर होता है। पात्र में दीपक होता है। उसके भीतर क्या होता है? स्नेह होता है, प्यार होता है, चिकनाई होती है। चिकनाई को स्नेह, प्यार कहते हैं।

दीपक, जो हमारे ज्ञान का प्रकाश है, वह दूसरों के लिए भी खरच होते रहना चाहिए और सदैव जलते रहना चाहिए। आप बुद्धिमान हैं, विचारशील हैं, आप जानकार हैं, आप ज्ञानी हैं, तो वह आपका ज्ञान केवल आपके पेट भरने के लिए खरच नहीं होना चाहिए। आप वकील हैं तो आपकी वकालत का ज्ञान गांधी जी के तरीके से असंख्यों को मिलना चाहिए। आप अगर विद्वान हैं, तो महर्षि व्यास के तरीके से आपके ज्ञान का लाभ असंख्यों को मिलना चाहिए। नहीं साहब! अपने ज्ञान से हम फायदा उठाएँगे और अपनी वकालत करेंगे और अपना घर भरेंगे।

मित्रो! यह अमानत है, भगवान की सौंपी हुई संपत्ति है। इसमें से कम-से-कम हिस्सा अपने लिए रखें और बड़े-से-बड़ा हिस्सा समाज के लिए फैला दें, ताकि दुनिया में रोशनी होना संभव हो सके। प्रकाश होना संभव हो सके। आपने एम.ए. किया है, तो एम.ए. का ज्ञान समाज को मिलने दीजिए। नहीं साहब! हम तो पेट भरने के लिए लगाएँगे। नहीं बेटे! ऐसा नहीं हो सकता। नहीं साहब! हमारी आमदनी हमको मिलेगी और औरत की भी कमाई हम खाएँगे और चालाकी की कमाई भी खाएँगे, ईमानदारी की कमाई भी खाएँगे। नहीं मित्रो! ऐसा नहीं हो सकता। अगर आप अध्यात्मवादी हैं और आप देवताओं की कंपनी में भरती होना चाहते हैं, तो आप ऐसा नहीं कर सकते, क्योंकि देवता उन्हें कहते हैं, जो दिया करते हैं। जिनकी नीयत हमेशा लेने की रहती है, इससे भी लेना चाहिए और देवता से भी लेना चाहिए। मित्र, भाई से भी लेना चाहिए, आचार्य जी से भी लेना चाहिए। गुरु से भी लेना चाहिए। पड़ोसी से भी लेना चाहिए। सबसे लेना चाहिए, तो ये देवता नहीं, लेवता हैं।

जो दें, सो देवता

मित्रो! देवता की वृत्ति है कि वह गरीब-से-गरीब आदमी को भी मौका दे सकती है कि वह लोगों को निहाल कर सके और समाज को लाभान्वित कर सके। बिहार के हजारीबाग जिले में एक गरीब किसान था, बिना पढ़ा, कोई ज्ञान नहीं, विद्या नहीं, लेकिन उसने अपने गाँव में आम का एक बगीचा लगाया। गाँव वाले लोग आते और कहते कि हमको आम की केरी दीजिए, चटनी बनाएँगे। हमको भी दीजिए। पेड़ पर पक्षियों को घोंसला बनाते हुए देखा। गाँव के किसानों को दोपहरी में, पेड़ की छाया में बैठते हुए देखा। रात के समय में जंगली जानवरों को, खरगोश को, लोमड़ियों को पेड़ के नीचे बैठते हुए देखा, तो वह गरीब किसान प्रसन्न हो गया कि मैंने एक धर्मशाला बना दी, अच्छा किया। मैंने अन्नक्षेत्र बना दिया, अच्छा किया। बस, उस किसान ने गाँव-गाँव में बगीचे लगाना शुरू कर दिया। दूसरों से भी प्रार्थना की, आप भी आम का बगीचा लगाइए। हजारी किसान सारी जिंदगी आम के बगीचे लगवाता रहा।

मित्रो! जब उसका जीवन समाप्त हुआ, तो लोगों ने पाया कि उसने जहाँ-तहाँ घूम-घूमकर हजार बगीचे लगाए

थे। हजारी उसका नाम था और उसने हजार बगीचे लगाए। इसलिए लोगों ने उस इलाके का नाम हजारीबाग रखा। हजारीबाग जिला बिहार प्रांत में है। वे बगीचे हजारी किसान के स्मारक के रूप में उसी तरीके से हैं, जैसे कि शाहजहाँ का स्मारक ताजमहल है। श्रम से भी आप ऐसा कर सकते हैं। हमारे मथुरा शहर में आज से 50-100 वर्ष पहले एक स्त्री थी—पिसनहारी। उसका असली नाम तो कोई नहीं जानता, पर वह पिसनहारी का काम करती थी। 12-13 वर्ष की उम्र में विधवा हो गई थी। ब्याह हुआ और थोड़े दिन में विधवा हो गई। विधवा होने के पश्चात चक्की पीसने का धंधा उसने शुरू किया। दो आने—12 नए पैसे रोज की, आटे की पिसाई लेती थी। उसी से उसने अपनी जिंदगी काट ली। मंदी का जमाना था, सो कभी एक पैसा, तो कभी दो पैसा बचत करती रही और जब बुड्ढी हुई, तो उसके पास घड़ा भरकर ताँबे के जो पैसे जमा थे, उसने गाँववालों को बुलाया और कहा कि इस पैसे को किसी अच्छे काम में लगा दीजिए।

मित्रो! गाँववालों ने उस पैसे से कुआँ बनवाया। पिसनहारी का वह कुआँ, दिल्ली वाली सड़क पर मथुरा से 3-4 मील आगे है। आप कभी जाएँ तो पिसनहारी का कुआँ तलाश करना। इतना ठंढा पानी, इतना मीठा पानी कि सारे इलाके में कहीं नहीं है। बीमारियों में उस पानी को लिया जाता है। अब वहाँ स्टैंड बन गया है। लोगों ने बगीचे लगा दिए हैं। बरात कहाँ ठहरेगी? पिसनहारी के कुएँ पर। दोपहरी में विश्राम कहाँ करेंगे? पिसनहारी के कुएँ पर। पिसनहारी का कुआँ इतनी बड़ी धर्मशाला है, इतनी बड़ी चीज है कि मैं क्या कह सकता हूँ? श्रम से भी—आप चाहें तो लोक-मंगल का बहुत बड़ा काम कर सकते हैं। पैसा आपके पास न हो, तो कोई बात नहीं।

हँसता-हँसाता जीवन जिएँ

मित्रो! पुष्प हँसता हुआ और हँसाता हुआ, खिलता हुआ और खिलाता हुआ रहता है। नम्र और कोमल, जिसने यह स्वीकार कर लिया है कि हम श्रेष्ठ के चरणों पर गिरेंगे। हम उन्हीं के चरणों के आस-पास रहेंगे और कहीं नहीं जाएँगे। बगीचे में रहे तो खिलते रहे और हँसाते रहे। जब उनके जीवन का अंत हुआ, तो उनके गले में सुराख किया। उसे भी उसने मंजूर कर लिया। माला बन करके, एकता के संगठन में एकत्र हो करके, किसी महामानव या भगवान के गले में जा विराजमान हो गए। श्रेष्ठ पुरुषों के चरणों पर विराजमान हो गए। आपका भी जीवन हँसता हुआ और हँसाता हुआ होना चाहिए। खिलता-खिलाता हुआ जीवन होना चाहिए। चंदन के तरीके से हमारा व्यक्तित्व ऐसा श्रेष्ठ होना चाहिए कि हमारे नजदीक जो कोई भी आए, साँप आए, बिच्छू आए, तरावट लेकर के जाए। हमारे मुहल्ले में उगे हुए झाड़-झंखाड़ हमारे ही तरीके से खुशबूदार बनते हुए चले जाएँ। जिन हाथों से चंदन घिसा जाए, उन हाथों में सुगंध फैले। जो लोग उसको जलाएँ, तो भी उनकी रूह को आनंद प्राप्त हो। आपका व्यक्तित्व चंदन जैसा होना चाहिए।

मित्रो! अगर आप देवत्व की सेना में भरती होना चाहते हों, देवता का पूजन करना चाहते हों, देवता का अनुग्रह पाना चाहते हों, आप दैवी जीवन जीना चाहते हों, दैवी संपदाओं के स्वामी बनना चाहते हों और वो विशेषताएँ पाना चाहते हों, जो सारी-की-सारी देवताओं में होती हैं, तो आपको पंचोपचार की शिक्षाएँ और प्रेरणाएँ अपने जीवन में धारण करनी होंगी। देवताओं के पास सिद्धियाँ होती हैं। देवताओं के पास चमत्कार होते हैं। देवताओं के पास भुजबल होता है। देवताओं के पास सम्मान होता है। देवताओं के पास सब कुछ होता है। उस सब कुछ को पाना चाहते हों, तो आपको देवता की पूजा-उपासना, देवता की आराधना प्रारंभ करनी चाहिए, जैसी कि प्रत्येक अध्यात्मवादी को दूसरे पाठ के रूप में करनी पड़ी है और करनी चाहिए।

मित्रो! मैंने गारंटी से आपको देवत्व का यह स्वरूप समझाया है। अगर आपने वह देवत्व प्राप्त नहीं किया है, तो देवता अगर चाहें कि हम आपकी मदद करेंगे, सहायता करेंगे, आपको लाभ देंगे, आपको वरदान देंगे, तो वे दे तो देंगे, लेकिन आप उससे कोई फायदा नहीं उठा सकते, लाभान्वित नहीं हो सकते। सारे अनुदान-वरदान बेकार चले जाएँगे।

देवत्व के बिना नहीं मिलते अनुदान

कैसे बेकार चले जाएँगे? देखिए—एक बार ऐसा हुआ कि पार्वती जी और शंकर जी आकाश मार्ग से बैल पर बैठकर चले जा रहे थे। शंकर जी का एक भक्त था। भक्त ब्राह्मण, उसकी स्त्री और एक बच्चा था। वे सारे दिन '**ॐ नमः शिवाय**' का जप करते। पार्वती जी ने—शंकर जी से कहा—"ये हमारे भक्त लोग हैं। हम इधर से निकल ही रहे हैं, तो इन बेचारों को कुछ वरदान देकर के चलें।" शंकर जी ने कहा—"पार्वती! बेकार है इनको

वरदान देना। क्यों? क्योंकि ये इस लायक नहीं हैं कि इन्हें कुछ दिया जाए और वे उसे सँभाल सकें। न तो इनमें पात्रता है और न ही सँभालने की क्षमता है। इसलिए इनको वरदान देना बेकार है और हमारे लिए अपनी शक्तियों को खराब करने के बराबर है। ये सब खराब कर देंगे और बेचारे कुछ पाएँगे नहीं।'' पार्वती जी ने कहा—''नहीं, महाराज जी! आप तो ऐसे ही बहाने बना देते हैं। इन्हें कुछ देकर के जाइए। पहले आप इन्हें कुछ दें, तो फिर पता चलेगा।'' अच्छा देकर के चलेंगे। तीनों वरदान माँगने को तैयार हो गए कि हम अपनी मनोकामना पूरी कराएँगे। स्त्री जरा समझदार थी, होशियार थी। सबसे पहले उछलकर वह आगे आ गई और बोली—''पहले हमारी मनोकामना पूरी कीजिए।'' शंकर जी ने पूछा—''कि तुम्हारी मनोकामना क्या है?'' उसने कहा—''भगवन्! हमें बीस साल की खूबसूरत युवती बना दीजिए।'' शंकर जी ने 'तथास्तु' कहकर जल छिड़क दिया। बस, वह ऐसी खूबसूरत हो गई कि अगर सिनेमा की कंपनी में कोई ब्रांड निकले तो उसी का नाम आए, बिलकुल टिपटॉप। ब्राह्मण ने उसे देखा तो, उसे बड़ा गुस्सा आया। वह बोला—''अच्छा कल तक तो कहती थी कि तुम्हारे साथ सती हो जाऊँगी और पतिभक्ति दिखाऊँगी। आज क्या हुआ? मुझे और बच्चे को भूल गई।'' ब्राह्मण की बारी आई वरदान माँगने की, ब्राह्मण ने शंकर जी से कहा—''भगवन्! मैं आपसे वरदान माँगता हूँ कि इस स्त्री को शूकरी बना दीजिए।'' शंकर जी ने कहा—''अच्छी तरह सोच लो?'' उसने कहा—''महाराज जी! मैंने सोच-विचार कर ही वर माँगा है।'' तथास्तु कहते हुए शंकर जी ने जल छिड़का और वह नारी से शूकरी बन गई।

बालक यह सारा दृश्य देखकर रोने लगा। शंकर जी ने कहा—''तुम क्यों रोते हो? तुम भी वरदान माँग लो।'' बच्चे ने कहा—''भगवन्! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो मेरी माँ को पहले जैसी बना दें। मुझे मेरी माँ चाहिए।'' शंकर जी ने कहा—'तथास्तु' और ब्राह्मणी पुनः शूकरी से पहले जैसी स्थिति में आ गई। शंकर जी ने पार्वती जी से कहा—''देवि! देखा आपने, इन तीनों ने तीन वरदान व्यर्थ गँवा दिए। ये तीनों चाहते तो विवेकपूर्ण वरदान प्राप्त कर सकते थे और अपना जन्म और जीवन सुधार सकते थे। हम इसीलिए आपसे कह रहे थे कि इनमें वरदान प्राप्त करने की पात्रता नहीं है।'' मित्रो! देवपूजन का अर्थ होता है—देवता की तरह अपने को विकसित कर लेना, ताकि देवता का जो स्तर है, उसके साथ जुड़ी जो विशेषताएँ हैं, वे हमको मिलती चली जाएँ। पात्रता का विकास करना ही, देवपूजन का मुख्य उद्देश्य है। देवता बनकर ही देवोपासना की जाती है।

आज की बात समाप्त।

॥ ॐ शांतिः ॥

एक निर्धन ब्राह्मण था। वह एक संत की बहुत सेवा किया करता था। उसकी सेवा से प्रसन्न होकर वह संत बोले—''तुमने मेरी बहुत सेवा की है। कोई मनोकामना हो तो मुझसे बोलो, मैं उसे पूरा करूँगा।'' ब्राह्मण बोला—''भगवन्! मेरा धनाभाव मिट जाए तो मुझ पर अत्यंत कृपा होगी।'' संत बोले—''तुम विंध्याचल में रहने वाले महात्मा प्रभुदास के पास जाओ। वे मेरे मित्र हैं। वे तुम्हें एक पारसमणि देंगे, जिससे तुम जितना चाहो, उतना सोना एकत्र कर सकोगे और धनी बन जाओगे।''

वह ब्राह्मण महात्मा प्रभुदास के पास गया। उनसे पारसमणि माँगते ही उन्होंने तुरंत वह मणि उसे दे दी। उसे आश्चर्य हुआ कि उस मणि के प्रति उन्हें कोई मोह क्यों नहीं? पूछने पर वे बोले—''वत्स! ईश्वरभक्ति से बढ़कर इस संसार में और कोई धन नहीं। वह मिल जाने पर और किसी संपदा की कामना नहीं होती।'' यह सुनते ही ब्राह्मण को लगा कि वह क्यों धन के फेर में पड़ गया। सब कुछ छोड़कर वह भी ईश्वरभक्ति में जुट गया।

विश्वविद्यालय परिसर से —161

यज्ञ पर शोध के लिए की गई अनूठी पहल

विश्वविद्यालय परिसर की दिव्य आभा में चहुँ ओर देव संस्कृति की सुवास बसी है। यहाँ ऋषिप्रणीत सांस्कृतिक विरासत के विभिन्न आयाम देश-काल-परिस्थिति के अनुरूप गढ़े जा रहे हैं, उन्हें वैज्ञानिकता और नूतनता में तराशा और सँवारा जा रहा है। यज्ञ एक ऐसी ही अमूल्य विरासत है, जिस पर परिसर में अनेकानेक तरह से अध्ययन एवं शोधकार्य हो रहे हैं। भारत में वैदिककाल से ही दुनिया के लिए यज्ञ सबसे बड़ा उपहार रहा है। वैदिककाल के बाद से ही यज्ञ भारतीय संस्कृति का केंद्रीय विषय भी रहा है।

यह न केवल जीवन जीने की एक शैली के रूप में भारतीय चिंतन में शामिल है, अपितु इसका व्यापक उपयोग मानवीय स्वास्थ्य, सामाजिक कल्याण, कृषिलाभ, पर्यावरण शुद्धि व आध्यात्मिक लाभों सहित विभिन्न क्षेत्रों में होता रहा है। यज्ञ की इस महत्ता को ध्यान में रखते हुए देव संस्कृति विश्वविद्यालय द्वारा **इंटरडिसिप्लिनरी जर्नल ऑफ यज्ञ रिसर्च (आई.जे.वाय.आर.)** नामक शोध पत्रिका का ऑनलाइन प्रकाशन प्रारंभ किया गया है। यह अपने आप में इस विषय पर प्रारंभ की गई विश्व की पहली शोध पत्रिका होगी।

वैज्ञानिकता के इस युग में यज्ञ अनुसंधान के विविध क्षेत्रों में वैज्ञानिकों द्वारा किए गए अध्ययन के प्रचार-प्रसार एवं उन्हें अन्य शोधार्थियों से साझा करने तथा यज्ञ अनुसंधान के विभिन्न शोध प्रयासों को एकीकृत करने हेतु एक अंतरराष्ट्रीय मंच की आवश्यकता बहुत समय से थी। यह प्रकाशन इसी आवश्यकता की पूर्ति करने में सक्षम होगा। इस जर्नल के ऑनलाइन प्रकाशन से दुनिया भर के शोधकर्त्ताओं और विद्वानों को अंतर्विषय यज्ञ से संबंधित शोध के विभिन्न क्षेत्रों में अपनी मूल पांडुलिपियों को प्रस्तुत करने व नवप्रवर्तकों, विशेषज्ञों, शिक्षकों और छात्रों के लिए भी अपने विचारों को साझा करने हेतु एक व्यापक मंच मिला है।

यह एक ऐसी सहकर्मी-समीक्षा पत्रिका होगी, जिसमें उन शोधपत्रों को प्राथमिकता दी जाएगी, जो यज्ञ पर शोध के दायरे से संबंधित हों। इसमें ऐसे लेखों का चयन किया जाएगा जिनका उद्देश्य उच्च शोध गुणवत्ता, समीक्षा, दृष्टिकोण और केस स्टडीज की उत्कृष्टता के साथ सामंजस्य बैठाना है।

विश्वविद्यालय द्वारा की गई इस अनूठी पहल के अवसर पर देव संस्कृति विश्वविद्यालय के श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ० प्रणव पण्ड्या जी ने इस विषय पर प्रकाश डालते हुए कहा कि यह पत्रिका आधुनिक समय में यज्ञ संबंधी शोधों की आवश्यकता को पूर्ण करने में सक्षम और समर्थ है। विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति ने कहा कि यह संपूर्ण विश्व में अपने आप में इस तरह का प्रथम एवं अभिनव प्रयास है। उन्होंने कहा कि परमपूज्य गुरुदेव ने अपने साहित्य के माध्यम से यज्ञ की वैज्ञानिकता को प्रबुद्ध वर्ग तक पहुँचाने का अभूतपूर्व प्रयास किया था। देव संस्कृति विश्वविद्यालय युगऋषि के इस कालजयी चिंतन को जनसामान्य तक पहुँचाने के लिए प्रतिबद्ध है। देव संस्कृति विश्वविद्यालय के यज्ञ अनुसंधान केंद्र के समन्वयक श्री विरल पटेल इस शोध पत्रिका के कार्यकारी संपादन के कार्य में अपनी विशिष्ट भूमिका निभाएँगे।

विश्वविद्यालय परिसर की अंतरराष्ट्रीय गतिविधियों के अंतर्गत बाकू, अजर बेजान में अंतरराष्ट्रीय योग दिवस के अवसर पर देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिनिधित्व में विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम संपन्न हुए। सर्वप्रथम ऐतिहासिक आतिशगाह अग्नि मंदिर में विश्वविद्यालय के शोधार्थी श्री जयराम मोटलानी को आई.सी.सी.आर. (अंतरराष्ट्रीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्) के द्वारा भारतीय सांस्कृतिक प्रतिनिधि के रूप में भेजा गया। उल्लेखनीय है कि देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति आई.सी.सी.आर. की गवर्निंग काउन्सिल के सदस्य हैं। इन कार्यक्रमों की शृंखला में यज्ञ, संस्कार इत्यादि कार्यक्रमों को श्री जयराम मोटलानी द्वारा संपन्न कराया गया। उन्होंने यज्ञ के प्रभाव एवं उपयोगिता पर गुरुदेव के विचारों को सबके सम्मुख रखा। कार्यक्रम में पधारे मुख्य अतिथि भारतीय राजदूत श्री संजय राणा के

साथ उनकी धर्मपत्नी श्रीमती बारबरा ने भी यज्ञ किया। दोनों महानुभावों के साथ अन्य सभी उपस्थित लोगों ने भी यज्ञ के विचारों-भावों को उत्साहपूर्वक हृदयंगम किया। सभी कार्यक्रमों के साथ बड़े स्तर पर योग, ध्यान, प्राणायाम आदि का प्रशिक्षण शिविर भी चलाया गया। इस आयोजन में अनेक देशों के भ्रमणकर्त्ताओं के साथ कई भारतीय परिवार भी आए थे। सभी ने प्रस्तुत कार्यक्रमों में बढ़-चढ़कर भागीदारी की। आयोजन के अंतर्गत भारतीय राजदूत श्री संजय राणा ने अपने घर पर भी यज्ञ कराया।

परिसर की आंतरिक गतिविधियों में भारतीय संस्कृति, धर्म व योग दर्शन की जिज्ञासाओं का समाधान पाने के उद्देश्य से इटली व स्विटजरलैंड के योगकेंद्रों के दो दलों ने परिसर में आयोजित कार्यशाला में भागीदारी की। यह कार्यशाला योग एवं समग्र स्वास्थ्य विषय पर आधारित थी। इन सदस्यों ने देव संस्कृति विश्वविद्यालय के दिव्य परिसर में आध्यात्मिक दिनचर्या का पालन किया व साथ ही तीर्थसेवन के क्रम में शांतिकुंज जाकर श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ० प्रणव पण्ड्या जी से भेंटवार्त्ता कर उनके मार्गदर्शन का लाभ उठाया।

इसी क्रम में इंडियन माउण्टेनिंग फाउन्डेशन की टीम द्वारा हिमालय की चंद्रभागा चोटी को विजय किया गया, जिसमें देव संस्कृति विश्वविद्यालय के क्रीड़ा विभाग के श्री नरेंद्र गिरि ने अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। श्री गिरि ने बताया कि इस दौरान श्री राजीव रावत के नेतृत्व में 11 सदस्यीय टीम ने ओ.एन.जी.सी. के सहयोग से सफाई एवं जागरूकता अभियान भी चलाया। इस स्वच्छता अभियान में हिमालयी उच्च क्षेत्रों, जैसे रोहतांग दर्रा, छतड़ू, ढाका ग्लेशियर, चंद्रभागा चोटी की सीबी पीक को कूड़े-कचरे से मुक्त किया गया।

पंद्रह दिन चले इस अभियान में 200 बैग कचरा एकत्रित किया गया। इसके साथ ही क्लाइंबिंग के रास्तों को भी साफ किया गया। बेस कैंप के आस-पास भी बड़ी मात्रा में सफाई की गई। माइनस 10 डिग्री तापमान में 20 हजार फीट ऊँची चंद्रभागा चोटी पर तिरंगे सहित आई.एम.एफ., ओ.एन.जी.सी. एवं गायत्री परिवार के प्रतीक चिह्नों को लगाया गया। श्री नरेंद्र गिरि को परिसर लौटने पर सभी विभागों द्वारा शुभकामनाएँ दी गईं। विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी के अनुसार, देव संस्कृति विश्वविद्यालय परिवार देवात्मा हिमालय की स्वच्छता, पवित्रता एवं मर्यादा को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए कृतसंकल्पित है। उन्होंने यह भी कहा कि यद्यपि श्री गिरि का प्रयास पर्वतारोहण संस्थान के नेतृत्व में संपन्न हुआ था तथापि हिमालय के पर्यावरणीय संरक्षण के लिए यह एक मील का पत्थर सिद्ध होगा—ऐसा हमारा विश्वास है।

विश्वविद्यालय परिसर की विशिष्ट गतिविधियों के क्रम में देव संस्कृति विश्वविद्यालय, गायत्री विद्यापीठ एवं शांतिकुंज में भारत गणराज्य का 72वाँ स्वतंत्रता दिवस उल्लासपूर्वक मनाया गया। इस अवसर पर विश्वविद्यालय परिसर में श्रद्धेय कुलाधिपति जी ने तिरंगा फहराया। साथ ही गायत्री विद्यापीठ में श्रीमती शेफाली पण्ड्या ने ध्वजारोहण किया। शांतिकुंज के कार्यकर्त्ताओं, शिविरार्थियों व देव संस्कृति विश्वविद्यालय तथा विद्यापीठ के विद्यार्थियों ने रंगारंग सांस्कृतिक कार्यक्रमों द्वारा आजादी का जश्न मनाया। देव संस्कृति विश्वविद्यालय परिसर में आजादी की 71वीं वर्षगाँठ को संस्कारयुक्त एवं व्यसनमुक्त भारत के संकल्प के रूप में मनाया गया।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय को विगत दिनों एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि इस रूप में प्राप्त हुई कि विश्वविद्यालय के भाषा विभाग प्रमुख प्रोफेसर राधेश्याम चतुर्वेदी को संस्कृत भाषा के क्षेत्र में उत्कृष्ट प्रदर्शन करने के लिए राष्ट्रपति पुरस्कार हेतु चुना गया। यह पुरस्कार उन विद्वानों को दिया जाता है जिन्होंने संस्कृत, पाली, प्राकृत आदि भाषाओं के प्रचार-प्रसार हेतु उल्लेखनीय कार्य किया हो। प्रोफेसर चतुर्वेदी का चयन तंत्रशास्त्र पर महत्त्वपूर्ण शोध करने के कारण किया गया है। संस्कृत व हिंदी में 23 पुस्तकों के लेखक प्रोफेसर चतुर्वेदी यह पुरस्कार प्राप्त करने वाले उत्तराखंड के पहले विद्वान भी हैं।

इस अवसर पर उन्हें शुभकामनाएँ देते हुए कुलाधिपति श्रद्धेय डॉ. प्रणव पण्ड्या जी ने कहा कि इस उपलब्धि पर देव संस्कृति विश्वविद्यालय ही नहीं अपितु देवभूमि उत्तराखंड भी गौरवान्वित है। देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति ने इस उपलब्धि को इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण बताया कि विश्वविद्यालय का उद्देश्य ही भारतीय संस्कृति का संरक्षण करना है एवं संस्कृत का प्रचार-प्रसार उस उद्देश्य की प्राप्ति में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पायदान है। प्रोफेसर राधेश्याम चतुर्वेदी जी की इस उपलब्धि पर कुलपति श्री शरद पारधी जी, कुलसचिव श्री संदीप कुमार जी ने भी अनेक शुभकामनाएँ प्रदान कीं। ☐

अपनों से अपनी बात

इस प्राण-प्रवाह को अविरल बहने दें

'अखण्ड ज्योति' मात्र एक छपे कागजों का पुलिंदा नहीं है। यह एक विशेष उद्देश्य के साथ प्रकाशित एक ऐसा प्राण-प्रवाह है, जो हर माह लाखों व्यक्तियों के अंतस्तल को झकझोरता है एवं उनके जीवन को बदलता है। 1937-38 से प्रकाशित इस प्राण-प्रवाह ने अगणित पाठकों के जीवन को श्रेष्ठता की दिशा में मोड़ा एवं उनके जीवन में सुख-सौभाग्य का प्रवेश कराया है। यह सतत, हर पल का एक गुरु का शिष्यों को मार्गदर्शन है। आप स्वयं देखें, तो पाएँगे कि जो समस्या मन को बड़ी देर से व्यथित किए हुए थी, उसका समाधान आपके समक्ष रखी इस पत्रिका की पंक्तियों में छिपा पड़ा था।

विशेष हैं हमारे पाठक

सामान्य सांसारिक जीवन जीने के लिए अखण्ड ज्योति के पाठकों ने जन्म नहीं लिया। वे कुछ विशेष हैं, उन्हें कुछ बदलाव लाना है। ऐसा हर पल उन्हें अनुभव होता है। 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका इसी कारण धुरी है—मन:स्थिति से परिस्थिति का निर्माण—सतत, हर पल सकारात्मक स्वाध्याय द्वारा मन का परिष्कार।

आज समय कितनी तेजी से बदला है, यह स्पष्ट देखा जा सकता है। वाणी, लेखनी, जीवनशैली हर क्षेत्र में बुद्धिमान समझे जाने वाले व्यक्ति भी लड़खड़ाए दिखाई देते हैं। किसी को किसी पर विश्वास नहीं रह गया। चारों ओर नकारात्मकता ही छाई दिखाई देती है। गैंगरेप से लेकर अपराधों की जघन्य पुनरावृत्तियाँ, आतंकवाद से लेकर विस्फोटक घटनाएँ, बढ़ती प्राकृतिक आपदाएँ, भौतिकवादी जीवनशैली कभी-कभी हमें निराश करती दिखाई देती है। ऐसे में सभी को एक सशक्त मार्गदर्शन चाहिए। ऐसे में गुरुवत् मार्गदर्शन हमें पूज्यवर की लेखनी देती है, जो 1937 से अनवरत चलती चली आई है। अखण्ड ज्योति के विचार हमें नकारात्मकता से विधेयात्मकता की ओर ले जाते हैं, हमें सही राह दिखाते हैं एवं एक ऐसी संजीवनी प्रदान करते हैं, जो नया जीवन देती है, अंधकार में प्रकाश का प्रतीक बनकर आती है। हमारा यह कर्त्तव्य बन जाता है कि इस प्रकाशपुंज से न केवल हम प्रकाशित हों, बल्कि हम नादानीवश अँधेरे में जीवन जी रहे अगणित व्यक्तियों के जीवन को भी प्रकाश से भर दें।

जरूरत अब आ पड़ी है

आस्थासंकट की इस वेला में हमें परिवारों को टूटने से बचाना है, लोगों के मनों को स्वस्थ बनाए रखना है, तो एक ही औषधि है—इस पावन-पुनीत पत्रिका में प्रकाशित चिंतन को जन-जन तक पहुँचाया जाए। यह संभव है इस ज्ञान की दीक्षा द्वारा इस पत्रिका को जन-जन तक पहुँचाकर। **यह पत्रिका जनवरी, 2012 से 120 रुपये प्रतिवर्ष में आपके पास पहुँचा करती थी, लेकिन इसकी लागत बढ़ने के कारण सन् 2016 से अब तक 180 रुपये प्रतिवर्ष पहुँचती रही। लेकिन अब जनवरी, 2019 से इसे प्रतिकूल परस्थितियों के कारण बढ़ाकर 220 रुपये किया जा रहा है।** कुछ निर्णय ऐसे होते हैं, जिनको लागू करते समय मन दु:खी तो होता है, पर विवशतावश कुछ कदम उठाने ही पड़ते हैं। विगत दो वर्षों से यह 180 रुपये प्रतिवर्ष (प्रतिपत्रिका 15 रुपया) ही जा रही थी। परंतु कागज के बढ़ते मूल्य, स्याही, प्रिंटिंग सेटअप का मेंटेनेन्स आदि की वजह से विगत एक वर्ष से घाटा उठाकर ही छापनी पड़ रही थी। अखण्ड ज्योति की परंपरा रही है—'न लाभ-न हानि'—'नो प्राफिट नो लॉस' एवं किसी भी स्थिति में विज्ञापन न लेने की नीति। पैकिंग, डाक-व्यय भी अनाप-शनाप बढ़े हैं। अब उस क्षेत्र में भी कुछ नया सोचा जा रहा है, ताकि सभी को पत्रिका सुनिश्चित रूप से सही समय पर मिले।

एक गुरुदीक्षा है—अखण्ड ज्योति

अखण्ड ज्योति का पठन-पाठन एक प्रकार की नित्य की गुरुदीक्षा है, गुरुज्ञान का संचार है। भारतीय संस्कृति का प्राण-प्रवाह है, जिसे पहुँचाना एक परम-पुनीत पुण्य माना जाना चाहिए। बढ़ती महँगाई के दौर में इस भार को बढ़ाना तो नहीं चाहते थे, पर लगातार एक वर्ष घाटा सहने के बाद नए वर्ष जनवरी, 2019 से इस राशि को बढ़ाया जाना अनिवार्य हो गया है। सामाजिक क्षेत्र में चहुँ ओर महँगाई बढ़ी है। रुपये की कीमत कम होकर 72 रुपया प्रति डालर होने से कागज के दामों में अनपेक्षित बढ़ोत्तरी आ गई है।

तुलनात्मक विवेचन

तुलनात्मक दृष्टि से देखें, तो सभी पत्र-पत्रिकाओं के दाम अखण्ड ज्योति से डेढ़ गुना से भी ज्यादा हैं। उदाहरण के लिए कल्याण मासिक 250 रुपया वार्षिक है; जबकि पृष्ठ 52 हैं। अखण्ड ज्योति 68 पृष्ठों की है। पांचजन्य की कीमत प्रतिसप्ताह पंद्रह रुपये है, यानी 60 रुपये प्रतिमाह एवं 720 रुपये प्रतिवर्ष। ओपिनियन पोस्ट पाक्षिक है, 68 पृष्ठों का होता है, मेकेनिकल न्यूज प्रिंट पर छपता है एवं शुल्क प्रतिकॉपी बीस रुपया है। आउटलुक 68 पृष्ठों का है, 25 रुपये प्रतिकॉपी शुल्क है। कादंबिनी मासिक 84 पृष्ठों की है। 25 रुपये प्रतिमाह पर बिक्री होती है। इंडिया टुडे भी मेकेनिकल न्यूज प्रिंट पर है, 68 पृष्ठों की है एवं एकप्रति प्रतिसप्ताह तीस रुपये (वार्षिक 1440 रुपये) है। इसी तरह गृहशोभा, सरिता, अहा जिंदगी, अध्यात्म अमृत, सनातन वाणी सभी काफी महँगी दरों पर हैं।

इस बार हमने कीमत एक साथ चालीस रुपये वार्षिक बढ़ाने का निर्णय लिया, ताकि पिछला घाटा तो शायद कवर न हो पाए, पर आगे यह और न बढ़े। कल्याण की तरह दानदाता इस पत्रिका को नहीं मिलते। हाँ पाठकों ने इसे हाथोहाथ लिया है एवं दाम हर बार बढ़ने के बावजूद इसकी पाठक संख्या बढ़ी ही है।

कुछ विशेष जो होने जा रहा है

(1) अब हम कथा प्रसंग, महापुरुषों के विशिष्ट संस्मरण अधिक संख्या में देंगे, जो जन-जन को दिशा देते हैं।

(2) वैज्ञानिक अध्यात्मवाद, यज्ञोपैथी एवं योग से उपचार पर हम अतिरिक्त लेख देंगे। इन विषयों पर विश्वविद्यालय में नूतन शोध हुए हैं, जिनका लाभ हम सभी को देना चाहते हैं।

(3) मानव प्रबंधन, समाज प्रबंधन, शिक्षा एवं विद्या, दैनंदिन व्यवस्था, पारिवारिक जीवन एवं पर्यावरण पर विशेष लेख अगले दिनों होंगे।

(4) गीता का युगगीता पक्ष परिजन अनवरत 12 वर्षों से पढ़ रहे हैं। अब गीता विश्वकोश की तैयारी है। गीता के क्लिष्ट श्लोकों के सहज-सामान्य अर्थ जन-जन की समझ में आ सकें, उसके मर्म को वे जीवन में उतार सकें, ऐसे लेख अधिक संख्या में होंगे। यह निर्विवाद तथ्य है कि गीता दैनंदिन जीवन की मार्गदर्शिका है। इस पर जितना ध्यान दिया जाए कम है।

(5) योगदर्शन, प्रस्थानत्रयी, आर्षग्रंथ के छिटपुट अंश अब रोचक भाषा में आएँगे, ताकि जन-जन भी हमारे सांस्कृतिक गौरव को जान सकें।

(6) गृहस्थ-दांपत्य जीवन से जुड़े अनेक पक्षों पर चिंतन हम देंगे।

(7) आयुर्वेद, नीरोग प्राकृतिक जीवन से जुड़े विभिन्न लेख इसमें होंगे।

(8) बच्चों से संबंधित कथा साहित्य एवं मार्मिक मार्गदर्शन प्रत्येक अंक में रहेंगे।

(9) पर्व-त्योहारों से जुड़े सभी पक्षों पर नूतन चिंतन भी होगा, ताकि हमारी यह आधुनिक पीढ़ी अपने पूर्वजों की धरोहर को सँभालकर रख सके।

(10) जीवन जीने की कला के कई पक्षों को अध्यात्म के सूत्रों के साथ गूँथकर देने का मन है, ताकि हर व्यक्ति आत्मसात् कर सके।

(11) बाल संस्कारशालाओं, कथा एवं किशोर कौशल सूत्रों का समुचित मार्गदर्शन भी पत्रिका में होगा। इसके अलावा नारी जागरण की प्रगतिशील दिशाधारा एवं परिवार निर्माण के सूत्रों पर भी प्रकाश डाला जाएगा।

(12) मिशन एक ही सूत्र पर टिका है—'विचारक्रांति अभियान।' हमारा प्रयास रहे कि इसी धुरी पर हम युग निर्माण करें और कराएँ। इस हेतु वैज्ञानिक चिंतन प्रस्तुत किया जाता रहेगा।

युवाओं के लिए विशेष

हमने पाठकों को युवाक्रांति वर्ष में युवा जाग्रति अभियान, वृक्ष गंगा अभियान, ग्रामतीर्थ योजना, बाल संस्कारशाला, भागीरथी जलाभिषेक आदि की जानकारी दी। फिर शक्ति संरक्षण वर्ष के अंतर्गत यह बताया कि किस तरह इन्हें स्थायित्व दिया जाए। अब हमारा कार्य मातृसत्ता नवसृजन महाशताब्दी अभियान के अंतर्गत सन् 2019 से आगामी 7 वर्षों तक अनवरत चलेगा। उसका एक ही लक्ष्य होगा कि सन्, 2026 तक परमवंदनीया माताजी के जन्म के सौ वर्ष पूरे होने तक तथा अखंड दीपक प्रज्वलन की 100वर्षीय अवधि पूरी होने तक हम निर्धारित लक्ष्य अवश्य पूरा कर लें। गृहे-गृहे गायत्री यज्ञ, गृहे-गृहे उपासना आंदोलन ने भी तेजी पकड़ी है। साथ ही दुष्प्रवृत्ति उन्मूलन के अंतर्गत नशामुक्ति अभियान भी तीव्रगति से पूरे देश में चल पड़ा है। युवाक्रांति वर्ष का समापन जिस तरह युगसृजेता कार्यक्रम (जनवरी, 2018) नागपुर में हुआ। उसके कई अच्छे परिणाम देखने में आ रहे हैं। युवा कौशल, किशोर कौशल एवं कन्या कौशल के सत्र पूरे देश में संपन्न हो रहे हैं। आशा की जानी चाहिए कि किशोर एवं युवाशक्ति भविष्य की बागडोर अच्छी तरह सँभाल लेगी।

विश्वविद्यालय से प्रवाहित होगी ज्ञान गंगोत्तरी

देव संस्कृति विश्वविद्यालय (गायत्रीकुंज हरिद्वार) नित-नूतन गतिविधियाँ संपन्न कर रहा है। यहाँ के छात्र-छात्राएँ-शिक्षक आदि विभिन्न राष्ट्रों में जाकर यहाँ का संदेश दे रहे हैं, तो विदेश के छात्र यहाँ आकर शिक्षण ले रहे हैं। यह सारी जानकारी परिजनों को अखण्ड ज्योति के पृष्ठों पर पढ़ने को मिलेगी। भविष्य की शिक्षा-नीति क्या, कैसी होगी? इसका संकेत देव संस्कृति विश्वविद्यालय में उठाए गए कदमों से मिलता है। नई पीढ़ी बड़ी तेजी से समाज के सरोकारों से जुड़ रही है एवं नए रचनात्मक क्रियाकलापों में संलग्न हुई है। यह एक शुभ संकेत है। मिशन की इस पत्रिका की सबसे बड़ी उपलब्धि है—युवा जाग्रति एवं युवाओं को देश के रचनात्मक प्रयोजनों से जोड़ना।

अखण्ड ज्योति पत्रिका आपकी बहुमुखी सेवा करती रहे, यह हमारा प्रयास रहेगा। यह दैवी संपदा को आप तक पहुँचाती है। यह एक आशावाद का आश्वासन लेकर आपके पास हर माह आती है। आने वाला जमाना बड़े बदलाव लेकर आ रहा है। आप भी जुड़ें अखण्ड ज्योति के रचनात्मक प्रवाह से और अनेकों को जोड़कर पुण्य अर्जित करें। ❑

परिवर्तन नोट किया जाए

परिजन-पाठक अपना वार्षिक चंदा (नूतन) 220 रुपये भेजकर इस प्राण-प्रवाह से अविरल रूप से जुड़े रहें। सन्, 2018 के समापन के साथ ही अब अखण्ड ज्योति मासिक का वार्षिक चंदा 220 रुपये होगा। अधिकतम 5 वर्ष का चंदा जमा किया जा सकेगा। आजीवन सदस्यता अब 20 वर्ष तक सीमित रहेगी। अब आजीवन (20वर्षीय) सदस्यता शुल्क 5000 रुपये होगा। विदेश में वार्षिक सदस्यता शुल्क 1600 रुपया प्रतिवर्ष होगा।

अँगरेजी पत्रिका का वार्षिक शुल्क 140 रुपये प्रतिवर्ष एवं विदेश में वार्षिक शुल्क 1200 रुपये रहेगा।

आशा है परिजनों का विश्वास हम पर सतत बना रहेगा एवं प्रवाह अविरल बहता रहेगा।

अगणित दीप जलाएँ हम

ज्योति जला जगमग जीवन की, जीवन भर मुस्काएँ हम॥
बनकर ज्योतित दीप धरा पर, अगणित दीप जलाएँ हम॥

याद रखें ज्योतित दीपक ही, अंधकार को हरता है॥
स्वयं प्रकाशित होकर सबका, पथ आलोकित करता है॥
जाग्रत रहें स्वयं, औरों को भी झकझोर जगाएँ हम॥
बनकर ज्योतित.........

ज्ञान-मान-सम्मान कर्म से मिलता है, हमने जाना॥
सर्वश्रेष्ठ है यही कर्म-पथ, भली भाँति यह पहचाना॥
ऐसी शक्ति हमें दो, जो इस पथ पर पाँव बढ़ाएँ हम॥
बनकर ज्योतित..........

सूर्य-चंद्र, तारागण निश-दिन, यही कर्म-पथ अपनाते॥
दिशा प्राप्त कर पथिक उन्हीं से, हैं आगे बढ़ते जाते॥
हम भी बढ़ें और पिछड़ों को आगे सतत बढाएँ हम॥
बनकर ज्योतित..........

करके आत्मशुद्धि दें सबको, प्रखर प्रेरणा शोधन की॥
समझें युग की माँग, करें हम और न अब अपने मन की॥
एक लक्ष्य ले सही दिशा में, एक साथ जुट जाएँ हम॥
बनकर ज्योतित दीप धरा पर अगणित दीप जलाएँ हम॥

—विष्णु कुमार शर्मा 'कुमार'

पूर्व प्रधानमंत्री भारतरत्न श्री अटल बिहारी वाजपेयी जी को युगतीर्थ शांतिकुंज में भावभरी श्रद्धांजलि

निर्मल गंगा अभियान के अंतर्गत हर की पौड़ी हरिद्वार में गायत्री परिजनों द्वारा महाश्रमदान

Swachh Bharat Abhiy

देव संस्कृति विश्वविद्यालय में स्वच्छ भारत अभियान विषय पर एक दिवसीय कार्यशाला

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

प्र. ति. -01. 10 . 2018
Regd No. Mathura-025/2018-2020
Licensed to Post without
Prepayment
No.: Agra/WPP-08/2018-2020

Kerala
Flood Relief Camp
2018
Gayatri Pariwar, Kozhicode
Contact - 9447114335, 9446042042

Flood Relief

केरल प्रांत में भीषण प्राकृतिक आपदा के उपरांत अविलंब राहत कार्य में पूरी शक्ति से जुट पड़ा गायत्री परिवार
प्रधानमंत्री राहत कोष में ₹ 1.25 करोड़ राशि का त्वरित सहयोग

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक–मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा
से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामंडी, मथुरा-281003 से प्रकाशित। संपादक–डॉ० प्रणव पण्ड्या।
दूरभाष–0565–2403940, 2400865, 2402574 मोबा–09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039
फैक्स–0565–2412273 ईमेल– ajsansthan@awgp.org